

THE RĀMĀYANA PLAYS, ATTRIBUTED TO BHĀSA

भास के रामायणमूलक नाटक

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की
एम० फिल० उपाधि के लिए प्रस्तुत
लघु शोध-प्रबन्ध

निर्देशक :

प्रस्तोत्री :

प्रो. चिन्तामणि त्रयम्बक कर्णे

एम. ए., पी-एच. डी., वेदान्तालंकार

श्रीमती मञ्जुकुमारी जायसवाल

प्राध्यापिका

नवगाँव बालिका महाविद्यालय, नवगाँव (असम)

संस्कृत विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

अलीगढ़

1991



DS2084

कृतकता-हापन

संस्कृत साहित्य की समृद्धतम धारा नाटक है। अपने भावों को दूसरे के सामने प्रकट करना एक प्रबल प्रवृत्ति है। इस दृष्टि से अभिनय ही अपने या नाटकों के भावों को अन्य मनुष्यों तक पहुँचाने का बेहतरीन माध्यम है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की ओर से जीटं टर्म टीचर फेलोशिप की सुविधा मिलने पर जब समय मिलने का सुअवसर मिला तो इस "नाटक" विषय पर कुछ करने का अपना लोभ संवरण न कर सकी।

मधुश्रीधर-प्रबन्ध के विषय का चयन करने में मेरे परम श्रद्धाभाजन गुरु श्री चिन्तामणि त्र्यम्बक वैद्यजी ने मुझे अत्यधिक उत्साहित एवं प्रेरित किया। इस मधुश्रीधर प्रबन्ध को लिखने में कई बार परामर्श के लिए गुरुजी के पास समय-समय में जाना पड़ा। इसके लिए स्वयं को कई बार अपराध-बोध से युक्त भी अनुभव किया किन्तु गुरुजी ने बड़े ही स्नेह एवं वात्सल्यपूर्ण ढंग से मेरी हर शिकायत का निवारण कर मेरा मार्ग प्रशस्त किया। मैं गुस्मानी श्रीमती तुमबा चिन्तामणि वैद्य जी का उल्लेख किये बिना रह ही नहीं सकती जिन्होंने मुझे मातृसत्त्व स्नेह दिया। एक वर्ष तक छात्रावास में रहने की अवधि में मैं कभी यह महसूस ही नहीं कर पायी कि भारत के सुदूर उत्तर-पूर्व प्रान्त - असम - से बाहर आगढ़ में हूँ।

मैं विभागाध्यक्षा विदुषी प्रोफेसर कुं पुष्पा हजेलाल जी की कृतज्ञ हूँ जिन्होंने समय-समय पर इस शोध कार्य को पूर्ण करने के लिए प्रोत्साहित किया।

मैं प्राध्यापक डा० तट्यदेव कोशिक, डा० तट्यप्रकाश शर्मा एवं डा० एस०आर० शर्मा जी के प्रति भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने समय-समय पर अपना अमूल्य समय व परामर्श मुझे दिया।

मैं अपनी पूजनीया माँ श्रीमती रामधारी देवी जी का विशेष रूप से उल्लेख करना चाहती हूँ जिन्होंने मेरी अनुपस्थिति में मेरे घर व बच्चों की स्नेहपूर्ण देखभाल की। मेरे बारह वर्षीय पुत्र कुमारेश एवं सातवर्षीय पुत्री मनुस्मिता भी साधुवाद के पात्र हैं जो एक वर्ष तक मातृस्नेह से वंचित रहे। यदि इनका सहयोग मुझे प्राप्त न होता तो सम्भवतः मेरा यह कार्य पूरा न हो पाता।

मैं अपने भाई श्री सुरेश चन्द्र की भी आभारी हूँ जितने तर गंगा नाथ का संस्कृत रितर्व इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद से उनके पुस्तकें उपलब्ध कराने में सहायता की ।

मैं मौलाना आजाद पुस्तकालय के हिन्दी संस्कृत विभाग के उपपुस्तकालयाध्यक्ष श्री शिवदत्त शर्मा जी एवं श्रीमती गोविंद जी की कृतज्ञ हूँ जिन्होंने पुस्तकें उपलब्ध कराने में हर सम्भव सहायता प्रदान की ।

मैं अपने महाविद्यालय के प्राचार्य श्री विमल कुमार बरा, श्री महेन्द्र नाथ शर्मा तथा श्री राजेन्द्र नाथ शर्मा के प्रति भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे सम्पूर्ण करने के लिए उत्साहित किया ।

श्री विनोद चन्द्र शर्मा भी धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने अल्प समय में ही इस लघुग्रंथ प्रबन्ध का टंकण कार्य पूरा किया ।

मैं अपने पतिदेव डा० राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल, एम०बी०बी०एस०, डी०सी०पी०, एम०डी० के विषय में इतना ही कहूँगी कि उनका सहयोग ही मेरा सबसे बड़ा सम्बल है ।

गान्धु कुमारी जायसवाल
श्रीमती मंजु कुमारी जायसवाल

विषय सूची

प्रथम अध्याय	पृष्ठ संख्या 1-30
विषयवाचक परिचय तथा भात और उनकी समस्याएँ	
द्वितीय अध्याय	31-47
रामायणीय कथावृत्त भात के नाटकों का विवरण	
तृतीय अध्याय	48-70
"प्रतिमा" : एक आलोचनात्मक अध्ययन	
चतुर्थ अध्याय	71-85
अभिनेता : एक आलोचनात्मक अध्ययन	
पंचम अध्याय	87-95
कृष्ण - कर्तव्य सम्बन्धी विवाद	
उपसंहार	96-101
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	102-104

—

प्रथम अध्याय

विवरणात्मक परिचय तथा मात और उनकी समस्याएँ

प्रथम अध्याय

जीवन और जगत् के भावात्मक प्रत्ययों की कला और कल्पनामयी अभिव्यक्ति को काव्य कहते हैं । इसी अभिव्यक्ति का जब भ्रू-न्द्रिय द्वारा आस्वादन किया जाता है तब उसे रूपक की रक्षा से जाना जाता है ।

साहित्य या काव्य के विभिन्न स्वरूपों एवं प्रकारों के विकास का इतिहास बहुत प्राचीन है । साहित्य के विभिन्न रूपों एवं प्रकारों में नाटक को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है । इसका प्रधान कारण यह है कि "काव्येषु नाटकम् रम्यम्" एक अनुभव सिद्ध सत्य है । आचार्यों ने भी नाटक को साहित्य के श्रेष्ठ रूप में व्यंजित किया है । अभिनय ही अपने या नाटक के भावों को अन्य मनुष्यों तक पहुँचाने का श्रेष्ठ माध्यम है ।

अभिनय के इतिहास के बारे में ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह सृष्टि जितनी ही पुरानी है अभिनय का इतिहास भी उतना ही पुराना है क्योंकि मनुष्य ने अपने हृदय में उठते हुए भावों को अभिव्यक्त करने के लिए निश्चित रूप से संकेतों, हंगितों व विभिन्न मुद्राओं का आश्रय लिया होगा । अभिनय का सूत्रपात और नाटक का उद्भव उसी दिन हुआ था जब किसी व्यक्ति ने किसी अन्य व्यक्ति के समक्ष इन्हीं संकेतों व मुद्राओं की सहायता से अपने अंग संचालन आदि के द्वारा अपने मनोभावों को प्रकट करने का प्रयास किया होगा ।

संस्कृत साहित्य की समृद्धतम धारा नाटक की है । संस्कृत साहित्य में अनेकों नाटककार हो चुके हैं किन्तु बहुतों की रचनाएँ और अनेक कवियों के तो नाम तक भी नहीं ज्ञात हैं । बीसवीं शताब्दी से पूर्व महाकवि मास एक प्रकार से साहित्य-जगत् में किंवदन्ती का विषय बने रहे । विविध कवियों एवं काव्याचार्यों ने मास के नामोल्लेख द्वारा साहित्य अध्येताओं को कोतुकापन्न किया । महाकवि कालिदास ने "प्रयितयज्ञता" उल्लेख कर मास को

1. प्रयितयज्ञता मास-सौमिल-कविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य

कथम् वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृती बहुमानः ।

मालविकाग्निमित्र सूत्रधार का कथन, प्रथम अंक

सिद्धहस्त नाटककार उद्धोषित किया। पुनः "सूक्तिमुक्तावली" में प्राप्त छन्द "भासनाटकयुगे" ¹ से यह प्रतिभासित हो गया कि भास लिखित नाटकों में "स्वप्नवासवदत्तम्" श्रेष्ठतम है। इन उल्लेखों से कतिपय अवधारणार्थ तथा कतिपय समस्याएँ भी उत्पन्न हुई -

1. संस्कृत का नाट्य साहित्य अति प्राचीन काल से समृद्ध रहा।
2. महाकवि भास प्रथम संस्कृत नाटककार हैं न कि महाकवि कालिदास।
3. सुभाषितग्रन्थों, आलंकारिकों तथा कवियों द्वारा भास तथा उनकी कृतियों के अंशों का उद्धरण साहित्यानुरागियों के लिए उत्कण्ठा का विषय बना।
4. 1910 में महामहोपाध्याय टी. गणपति शास्त्री द्वारा संपादित "भासनाटकयुगम्" ² की प्रामाणिकता - अप्रामाणिकता - विषयक मत - वैभिन्न्य का उदय।
5. सम्पूर्ण "नाटकयुगम्" का कर्तृत्व किसी एक ही "भास" नामक रचनाकार को देना किस सीमा तक संगत है ?

हम इन अवधारणाओं एवं समस्यामूलक प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में विवेचना प्रस्तुत करेंगे। महाकवि भास का स्थिति-काल संस्कृत नाट्य-साहित्य का उषःकाल तथा उनके नाटकों की रचना-प्रक्रिया एवं जैली कालिदास आदि कवियों के लिए सही अर्थों में उपजीव्य है।

प्रायशः महाकवि कालिदास की ललित नाट्य रचनाओं के परिशीलनोपरान्त यह उक्ति सुविदित बनी काव्येषु नाटके ^{रस्यं तत्र} रम्या ऋजुन्तला। इतना ही नहीं उनकी रचना-शैली आदर्शभूत मान्य हो चली किन्तु स्वयं कालिदास

1. भासनाटकयुगेऽपिच्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितम्।

स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पाकः॥

॥ सूक्ति मुक्तावली ॥ / राजशेखर

2. त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सिरीज, त्रिवेन्द्रम्, 1912

द्वारा भास सीमिल प्रभृति कवियों के नामोल्लेख से यह अधारणा बाधित है गयी । सैततः हम कह सकते हैं कि संस्कृत नाट्य-साहित्य का लिङ्गाक्षर है ज्ञातव्यो पूर्व अपनी प्रौढावस्था प्राप्त कर चुका होगा । भास, कविवर, सीमिल आदि की प्रक्रियायज्ञता सम्बोधित करना इसका द्योतक है । भास के अतिरिक्त सीमिल एवं कविवर की किसी नाट्यकृति का ज्ञान अद्यावधिपर्यन्त नहीं हो सका है और न तो कवियों अलंकारशास्त्रियों द्वारा ही ऐसा हो । उनकी रचनाओं पर प्रकाश डालें । दूसरी ओर महाकवि भास की साहित्यिक प्रतिष्ठा का उद्घोष बाणभट्ट तथा दण्डी जैसे विद्वत् कवि, वाग्म, भागवत, वाग्मतिराज, अभिनवगुप्त, भीमदेव, राजशेखर, शारदातन्त्र, स्वर्णनन्द, भागवत-नन्दी, रामचन्द्रगुणवन्द्य आदि आलंकारिकों एवं कवियों ने किया । तात्पर्य यह कि भास एक मान्य कवि के रूप में और उनकी रचनाएँ साहित्य जगत् में स्वीकृत रूप में प्रतिष्ठापित रहीं । भास की कवि-व्याप्ति-प्रतिष्ठा का स्फुरात्मक प्रतिपादन 'पुष्पीराजविजय' के टीकाकार जोनराज का यह कथन भी करता है - प्रतिस्पर्धी भास¹ एवं व्यास दोनों की एक-एक श्रेष्ठ कृतियाँ अग्नि में छोड़ी और मुनि भास का काव्य 'विष्णुधर्म' जला नहीं, अक्षत रहा । इसी आधार पर वाग्मतिराज ने 'गुडघटो' महाकाव्य में भास को 'जलजमिती'² अग्नि का मित्र कहकर प्रशंसित किया । इन्हीं सन्दर्भों की पुनःस्थापना कदाचित् बलदेव उपाध्याय³ ने भी की । यद्यपि 'विष्णुधर्म' काव्य अनुपलब्ध है तथापि उसके कर्ता महाकवि भास की साहित्यिक प्रतिष्ठा का प्राचीनताम स्वीकार तो यह सन्दर्भ है ही ।

1. तत्काव्यार्णहारविधौ क्लान्तं दीप्तानि ज्वरपि मानसानि ।
भासस्य काव्यं तु विष्णुधर्मान् तोडप्यान्नात्पारदवन्धुमोच ॥
[पुष्पीराज विजय]

2. भासस्मि जलजमितीकान्तीदेवे अ जलसं रहुआरे ।
सीमन्धवे अन्धस्मि हारियन्दे अ आणन्दो ॥
[गुडघटो-वेदग्यवर्णम् / 20]

3. विष्णुधर्म प्रतिपादकान्शान्तिर्न दग्धवान् ।

-महाकवि भासः एक अध्ययन, आचार्य बलदेव उपाध्याय,
विषय प्रवेश की भूमिका, पृष्ठ - 6

उस अति अतीतकाल में जब लौकिक साहित्य पूर्णतया विज्ञोन्मुख भी न हो सका था महाकवि भास ने नाट्यरचना कर प्रतिष्ठा प्राप्त की तथा "नाटकान्तं कवित्वम्" को चरितार्थ कर नाट्य-साहित्य के इतिहास को अपनी प्रतिभा से प्रकाशित किया । उन्होंने अपने तेरह नाटकों में निश्चित ही समाज-संस्कृति के विविध पक्षों एवं जन्मानस की विभिन्न वृत्ति-प्रवृत्तियों का चित्रण किया । सम्भवतः कालिदास ने भास की नाट्यकृतियों के ही आधार पर विभिन्न रुचि वालों जनों के लिए नाटक को एक समाराधन की वस्तु कहकर प्रशंसित किया - "यह नाट्य देवों की ओरों के लिए जौमन यज्ञ है । महादेव ने स्वयं उमा से विवाह सम्पन्न कर अपने देह में ताण्डव तथा लास्य रूप में इसके दो भाग कर डाले। इसमें तत्त्व, रज तथा तम तीनों गुण विद्यमान रहते हैं । लोगों के चरित भी विविध रसों के माध्यम से अंकित होते हैं । यही कारण है कि यह नाटक ही एक ऐसा समारोह है जहाँ विभिन्न रुचि के जनों को समानता: आनन्दानुभव होता है ।" ¹ ऐसे देवों के वाङ्मय-रूप नाटक को लौकिक संस्कृति-धर्म बनाने वाले भास का गुणकीर्तन क्यों न हो ? महाकवि बाणभट्ट तथा कवि दण्डी ने भास की नाट्यकृतियों के रूप में नाटक की शास्त्रीय रूपरेखा का प्रकट विश्लेषण देखा - भास के नाटकों का प्रारम्भ सूत्रधार होता है, पताका से युक्त भूमिका वाले तथा देवाल्यों के सदृश प्रख्यात होते हैं । ² इसी प्रकार भास के नाटकों में सुब तथा प्रतिमुख तन्धियाँ प्रकटतः परिलक्षित होती रहती हैं, उन्होंने अनेकशः वृत्तियों के माध्यम से उन्हीं विविध भावदशाओं की मनीषा अभिव्यक्ति दी है । ³ काव्यगुणों

-
1. देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्तं कृतं वाङ्मयं
स्त्रैषिदमुमाकृतव्यतिकरे स्वागि विभक्तं विधा ।
त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकरचितं नानारसं दृश्यते
नाट्यं भिन्नस्वैर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधकम् ॥

- मालविकाग्निमित्रम् 1/4

2. सूत्रधारकृतारम्भेनाटकेष्वहुभूमिकैः ।

तपतकैयशीलेभि भासो देवकुलैरिव ॥

- हर्षचरित, प्रथम उच्छ्वास

3. सुविभक्तमुख्यान्धैव्यवतलक्षणवृत्तिभिः ।

परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ।

- अवन्तिमुन्दरीकथा ॥ वीं श्लोक

का यह कथन उनके नाट्य-साहित्य का समर्थन है। "भासनाटकसमूह" की सर्वश्रेष्ठ रचना "वासवदत्तम्" को नाट्यलेखनविधा का आदर्शभूत- सदृश स्वीकार काव्यशास्त्रियों ने अपने ग्रन्थों में, उसके विभिन्न स्थलों को उद्धृत किया¹ अथवा सिद्धान्त प्रतिपादन के क्रम में उक्त नामोल्लेख² अवश्य किया है। "वासवदत्तम्" के अतिरिक्त अन्य नाटकों के भी कतिपय स्थल विभिन्न आलंकारिकों ने उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत किये हैं जो उन नाटकों की उत्कृष्टता का डिण्डिम-नाद है। उनमें प्रमुख हैं - प्रतिज्ञायौगन्धरायण, बालयरित वासुदत्त।³ "कौमुदीमहोत्सव"⁴ में अक्किमारक का उल्लेख और प्रसन्न राघवकार जयदेव द्वारा भास की प्रशस्ति उनकी यज्ञस्वी गाथा के निर्णायक हैं - जयदेव की कविता कामिनी का स्वरूप कितना दिव्य है और बिल्हण केश संभार है, कवि मयूर उनके कर्णपूर, भास उनके

1. शरच्छाकगौरेण वाताच्छेन मामिनि ।

काशपुष्पलवेनेदं साक्षुपातं मुख मम ॥

-स्वप्नवासवदत्तम् 4/8 [वामन द्वारा काव्यालंकार में उद्धृत]

2. [क] स्वप्नवासवदत्ते -पदमाक्तीमस्वास्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहं गतः ।

पदमाक्तीरहितं च तदवलोक्य तस्या एव शयने सुषवाप ।

वासवदत्तां च स्वप्नवदस्वप्ने ददर्श । स्वप्नायमानश्च वासवदत्तामाबभाषे ।

स्वप्नशब्देन चेह स्वापी चः स्वप्नदर्शनं --- [भीमदेव] भृंगारप्रकाश

[ख] ववचित् क्रीडा यथा स्वप्नवासवदत्तायाम् ।

- अभिनव भारती

[ग] तत एव विक्रमोर्वशीयस्वप्नवासवदत्ता नाटकमिति व्यवहरन्ति ।

- अभिनव भारती

3. [क] लिम्पतीव तमोऽहं गानि वर्णतीवान्जनं नमः ।

अतत्पुस्तकैवेव दृष्टिर्निष्पलतां गता ॥

[बालयरित/15, वासुदत्त/19] काव्यादर्श में उद्धृत

[ख] भादा हृदो अणेन मम पिदा अणेन मम सुदो० ।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण अं- ।

यही छन्दबद्ध -

हृदोऽनेन मम भ्राता मम पुत्रः पिता मम ।

मातुलो भगिनेयश्च रुधा तंरब्धयितसः ॥

[भामह] काव्यालंकार

4. शौनकमिव बन्धुमती कुमारमक्किमारकं कुरंगीव ।

अहंति कीर्तिमतीर्य कान्तं कल्याणवर्माणाम् ॥

हास, कालिदास उसके पिता, महाकवि हर्ष हर्ष एवं बाण पंचबाण स्वरूप है ।¹
महाकवि भास की इस ध्वनिकीर्ति रूपी चन्द्र ज्योत्स्ना से रनात साहित्य-जगत्
जब आधारभूतबिम्ब "भासनाटकग्रन्थ" के सुधर दर्शन का पात्र बना तो उसके स्वरूप-
निर्धारण-जनित अटोपोहात्मक द्वन्द्व से ग्रस्त हो गया । प्रमाणिकता पर प्रश्नचिन्ह
लगा, मतविमिन्य प्रकटा । एक कर्तृत्व की समस्या से विद्वज्जनों में पक्ष विभाजन
उपस्थित हुआ । हम "भासनाटक समूह" के एक कर्तृत्व पर पहिले विवेचन करना
संगत समझते हैं फिर कवि के स्थिति-काल पर विचार प्रस्तुत करेंगे ।

1. "भासनाटकग्रन्थ" के नाटकों में कहीं भी कता का नामोल्लेख नहीं है, किन्तु
महाकवि बाण ने "तुल्यधारकृतारम्भे" द्वारा अपनी विद्वुत कथाकृति "हर्षचरितम्"
में भास के नाट्यसाहित्य का प्रमुख वैशिष्ट्य उद्धोक्षित किया है । यह
विकिष्टता प्रायः नाटक समूह की सभी कृतियों में प्राप्त होती है ।
नाटकों में "नान्द्यन्ते ततः प्रचिञ्चति तुल्यधारः" मिलता है, कालिदास आदि
कवियों की नाट्यकृतियों में नान्दी श्लोक के पश्चात् "नान्द्यन्ते" प्राप्त
होता है । इन नाटकों में यह पूर्णतः मिन्य है ।
2. अन्य संस्कृत नाटकों की प्रस्तावना के स्थान पर इन्हीं "स्वापना" मिलती
हैं और प्रायः सबसे भरतवाक्य² एक समान तथा नाटक का नामोल्लेख
अन्त में किया गया है ।³
3. नाटक समूह के प्रायः नाटकों के वस्तु-विन्यास में तादृश्य है । प्रारम्भिक

1. यस्याश्चोरगिघृक्षुरनिकुरः कर्णपुरो मयुरो ।

भातो हासः कच्छित्गुरुः कालिदासो विनातः ।

हर्षो हर्षः हृदयवसति पंचबाणस्तु बाणः ।

प्रतप्नराघव, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, तन् 1956, 1/22

2. इमामपि महीं कृत्स्नां राजतिहः प्रजास्तु नः ।

॥ वासव 6/19, प्रतिज्ञा 4/25, अक्वमारक 6/22, अभिषेक 6/35,

वैद्यराज 3/26, द्रुतवाक्यम् 56 आदि ॥

3. स्वप्नावासवदत्तमवसितम्, प्रतिज्ञानाटिकावसिता आदि ।

श्लोक में मुद्रालंकार¹ के माध्यम से प्रमुख पात्रों का नाम निर्दिष्ट किया गया है ।

4. नाटक समूह की नाट्यकृतियों में आधार्य भरत के [नाट्यशास्त्र] नाट्य नियमों का प्रायः पालन नहीं हुआ है । प्रायः भरत आदि दृश्यों का रंगमंच पर प्रदर्शन अविलंबित है किन्तु "प्रतिमा" में दशरथ का "अभिषेक" में बालि का "उत्सर्ग" में दुर्योधन का निधन प्रदर्शित किया मिलता है ।² युद्ध, पूजन, क्रीडा और श्रम आदि के भी दृश्य रंगमंच पर प्रदर्शित किये गये हैं ।³
5. नाटकसमूह के अधिकांश नाटकों में भाषा का स्मान प्रयोग देखने को मिलता है । स्वप्नवातवदत्तम्, दूतवाक्य, दूतघटीकव, उत्सर्ग, बालघरित, अभिषेक और पंचरात्र में एक ही वाक्य, घटना-तन्त्र में एक कथा-संयोजन के अन्तर से प्रयुक्त किया है ।⁴

1. [क] उदयनीन्दुसवर्णावातवदत्ताथली बलस्य तयाम् ।

स्वप्नवातवदत्तम्, ओं 1/1

[ख] सीताभवः पातु तुमन्त्रतुष्टः ० । प्रतिमा, ओं 1/1

[ग] द्रोणः पृथिव्युत्तुनमीमदुती ० । पंचरात्र, ओं 1/1

[घ] उत्पन्ने धार्तराष्ट्राणां विरोधे ० । दूतवाक्यम्, ओं 1/2

2. [क] हन्त पतिता बालीः रुधिरकलितगात्रः सुस्तसैरक्तनेत्रः

कठिनविपुलबाहुः काललोकं विविशुः ।

अभिषतति कथन्विद धीरमाकर्षमाणः

अक्षरपरिवीतं ज्ञान्तवर्गं शरीरम् ॥

अभिषेक, ओं 1/16

[ख] एव रुधिरपतन्द्योतितानि निपतन्तं कुरुराजं दृष्ट्वा - - - - -

उत्सर्ग, ओं - ।

3. बालघरितम् ओं - 5, स्वप्नवातवदत्तम् ओं - 5

4. स्वमार्थमिहान् विहापयामि [परिक्रम्याकलोचय] अथ

किन्तु शत्रु मयि विहापनद्वारा शब्द हव हुयते - - - -

स्वप्नवातवदत्तम् / स्थापना /

6. शास्त्रीय निबंध पर प्रतिष्ठित नाट्यकृतियों की परम्परा के प्रतिकूल इन नाटकों में वीरचन्द्र का प्रयोग किया गया है। इतना ही नहीं पाणिनीय व्याकरण के अनुबन्धों के विपरीत प्रयोग के साथ-साथ प्राकृत का प्रयोग भी परवर्ती नाटकों की अपेक्षा असामान्य है।

अन्तः साक्ष्यों के आधार पर हमें इन नाटकों में, भावों का सादृश्य, वाक्यों की समानता, नाटकीय परिस्थितियों की समान अवधारणा भी स्पष्टतः दृष्टिगत होती है।

7. दूतघटीरुचय तथा उत्सर्ग में ऊर्जुन का जीय चित्रण समान भावभूमि पर किया गया है। नृपों के निधनीपरान्त यज्ञः शरीर में जीवित रहने का समानतः वर्णन इन नाटकों में किया गया है। स्वरतन्त्री साधक नारद को कलह-प्रिय कहा गया है।¹
8. प्रकृति वर्णनों से सम्बन्धित भावभूमि और चिन्तन, यु. यु.-भूमि आदि के चित्रण भी नाटकों में प्रायः समान हैं। कतिपय नाटकों में समान वाक्य अथवा वाक्यांश भी सहजतः प्राप्त होते हैं।²
9. घटना विविध के विभाजन-हेतु विभिन्न नाटकों में एक समान शब्दावली का प्रयोग मिलता है।³

1. उत्पादयाम्यहरदिविधित्वायैस्तन्त्रीषु य स्वरगणान् । विध लोके ॥
अधिकारक, अंक 6/11

2. [क] भात्यस्तमस्तकृन्नातलतैनिविष्टः ।

सन्ध्यावगाट इव पश्चिमकालसूर्यः ॥ उत्सर्ग, 1/59

- [ख] किमुत्तरस्यापि नैर्दृतातपः ।

करो मुहुर्तास्तमितो दिवाकरः ॥ पंचरात्रम्, 3/16

3. [क] भोः भोः निविष्टा निविष्टा महाराजायंगिरवराय । वर्षभार अंक - ।

- [ख] भोः भोः निविष्टा तावत्पुत्रजगतादयान्धवाय विज्ञान -

विस्तारितविनयाचारदीर्घबुधे महाराजाय ।

दूतघटीरुचयम्, अंक - ।

- [ग] भोः भोः निविष्टा निविष्टा महाराजाय विराटेश्वरीय ।

पंचरात्रम् • अंक -2

10. कुछ नाटकों में पात्रों के नाम-साम्य भी हैं - "प्रतिज्ञायौगन्धरायण" एवं द्रुतवाक्यम्" में कंयुकी का नाम बादरायण और "स्वप्नवासवदातम्", "अमिषिक" और "प्रतिमा" नाटकों में प्रतिहारी का नाम "विजया" ही प्रयुक्त हुआ है।
11. अमिषिक और वासवदात में समान नाटकीय परिस्थितियाँ अव्यक्त हुई हैं। जिस प्रकार "प्रतिमा" और "अमिषिक" नाटकों में सीता रावण को आपित करती है उसी प्रकार "वासवदात" में वसन्तसेना शकार की प्रार्थना को अस्वीकार ही नहीं करती बल्कि उसे आप भी देती है। यह परिस्थिति दोनों नाट्यकृतियों में समान माध्यम पर अव्यक्त है। यदनाक्रम अवश्य पृष्ठ है।

"भासनाटकसमूह" के नाटकों में इन विविध साम्यों का स्तुति मिलता है कि इनका लेखक कोई एक ही व्यक्ति है। इस समूह के एक नाटक "स्वप्नवासवदातम्" को राजशेखर ने भास की रचना स्वीकारी है, अतः इन सभी नाटकों को भासकृत मानना अतर्क्य नहीं होना चाहिए। 370 समीक्षीय इस मत के प्रबल पक्ष हैं। उनका कहना है कि इस प्रश्न का इतना महत्त्व नहीं कि ये कृतियाँ भास की हैं या नहीं? उत्तर इस बात का चाहिए कि ये सारी रचनाएँ एक ही व्यक्ति की हैं या नहीं? और इतना कि वह व्यक्ति मुख्यकालिक और कालिदास का पूर्ववर्ती है या नहीं? मुख्यकालिक का इसलिए कि कुछ की यह कृति भास के वासवदात का ही सम्भवतः बृहत्तर संस्करण है। और यह दोनों ही प्रश्न प्रायः अनुकूलार्थ में प्रतिपादित होते हैं।¹ रामचन्द्र गुणचन्द्र द्वारा अपने "नाट्यदर्पण" में उद्धृत "वासवदातम्" के श्लोक का संज्ञा प्राप्त इस नाटक के संस्करणों में प्राप्त न होना भी इस निश्चय की बाधित नहीं करता। कारण यह है महाकवि भास लोकप्रियता के उच्च स्तर पर आरुह्य हो चुके थे और उनकी नाट्यकृतियों के बहुधा संस्करण हुए ही तो असम्भव नहीं। इसलिए संस्करण विविध

से पाठान्तर हो जाना आश्चर्य नहीं । फिर "भासनाटकसमूह" में प्राप्त श्लोकों एवं आलंकारिकों द्वारा उदाहृत इन श्लोकों की भाषा-शैली आदि में अन्तर प्रतीत नहीं होता । नाटकों के भास-कृत होने के पक्ष में डा० भगवतशरण उपाध्याय का एक कथन बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है - "कालिदास के "मालविकाग्निमित्र" में "प्राशिनक" शब्द का व्यवहार हुआ है । प्राशिनक रंग के विशेषज्ञ थे और उनका काम था कि प्रारम्भिक खेल को देखकर राजा से उसकी स्तुति या निन्दा में अपना निर्णय दें । x x x x कालिदास की अपनी पहली कृति "मालविकाग्निमित्र" के सम्बन्ध में जैसा निश्चय रही होगी जो उनके वक्तव्य-कथातिलक भास, सौमिल्ल और कविपुत्र के प्रबन्धों {नाटकों} को छोड़कर {निरादृत करके} नये नाटक को खेलना कहाँ तक उचित है, से स्पष्ट है । परन्तु उन प्राशिनकों में "मालविकाग्निमित्र" को प्रमाणित पास कर दिया । इसी प्राशिनकों के प्रसंग में भास का नाम लेना विशेष अर्थ रखता है । लगता है कि यह नाटक {स्वप्न-वासवदत्तम्} प्राशिनक पद्धति से पास हो चुका था । इस कारण ही राजशेखर ने "भासनाटकसमूह" के नाटक "स्वप्न-वासवदत्तम्" की प्रशंसा की । ये तथ्य "भासनाटकसमूह" के रचयिता भास को ही प्रमाणित करते हैं । यह मत महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री के अतिरिक्त डा० ए०डी० पुतालकर एवं डा० ए०बी०कीथ का भी है ।

एक दूसरा वर्ग राम पिञ्जरीटी, प्रो० कान्हे, देवधर एवं विन्टरनिक्स आदि का है जो "भासनाटकसमूह" का रचनाकार महाकवि भास को स्वीकारने में आपत्ति करता है । उनका तर्क है -

1. पारम्परिक अभिनेता-वाक्यार्यों {अथवा पल्लवनेर्यों के समापण्डित} की रचना है । कारण नाटकों की हस्तलिखित प्रतियाँ दक्षिण भारत केरल प्रान्त के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं मिली वर्यो 9 अधिकतर नाटकों के भरतवाक्यान्तर्गत राजसिंहः प्रजास्तु नः" समानव्य से प्राप्त होता है । कुछ पल्लवनेर्यों ने "राजसिंह" की उपाधि धारण की थी । {उल्लेखनीय है कि पल्लवनेर्यों की "राजसिंह" उपाधि का कोई ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं मिलता } वाक्यार्यों की परम्परा यह है कि वे कभी समूचा नाटक नहीं खेलते बल्कि कभी वे एक

नाटक क्षेत्र में दृश्य चुन लेते हैं कभी दूसरे से और अपने प्रत्येक खेल के लिए उनका समान परिचय होता है। कुछ आश्चर्य नहीं कि इनकी प्रस्तावनाएँ बाद में लिखी गयीं और प्रधान दृश्य मूलक या घटा-बढ़ाकर आवश्यकता के अनुसार कर लिये गये जिससे समान रूप से संपादित होने के कारण उनमें शैली, भाषा, वस्तु-गठन, रंग निर्देश आदि की परस्पर समानता बनी रही। अलंकारशास्त्रियों के उद्धरण भी अनेक बार सर्वथा इन रचनाओं या उनके प्रासंगिक स्थलों से नहीं मिलते। फिर भी यह भी सम्भव है कि प्राकृतों की शैली कालिक-विकास से इतना सम्बन्ध न रखती हो जितना स्थानीय विभिन्नता से, जिस कारण वह क्लासिकल नाटकों की प्राकृतों से भिन्न हो सकती है, कुछ पूर्वकालिक होने से नहीं। प्रो० विन्टरनिट्स इन कारणों से इन रचनाओं को भास का नहीं मानते।¹

2. यह सप्रमाण नहीं कहा जा सकता कि "त्रिधेन्द्रम संस्कृत सिरिज" का ही "स्वप्नवासवदत्तम्" राजशेखर द्वारा अभिषुष्ट भास रचित "स्वप्नवासवदत्तम्" है। क्योंकि "ध्वन्यालोक" तथा "नाट्यदर्पण" में उद्धृत अंश "स्वप्न-वासवदत्तम्" संस्करण में अनुपलब्ध है -

॥१॥ संयित पद्मकपाटं नयनद्वारं स्वल्पतः नैनः ।

उद्धादय सा प्रविष्टा हृदयगृहं मे नृपतनूजा ॥

- ध्वन्यालोक

पादाक्रान्ताणि पुष्पाणि सौष्मयेदं जिलातलम् ।

नूनं कार्पाद्विहासीना मां दृष्ट्वा सहसा गता ॥

- नाट्य दर्पण

इस कारण स्पष्ट संकेत है कि "भासनाटकसमूह" का "स्वप्नवासवदत्तम्" मूल नाटक

का अभिनेय¹ रूप है ।

तीसरा वर्ग वह है जो इन नाटकों को अंशतः भास-कृत स्वीकारता है । इस वर्ग के प्रमुख विद्वान् हैं - डा० सुकधनकर, डा० बर्नट² एवं पण्डित रामावतार शर्मा ।³ तर्क यह है कि इन नाटकों की हस्तलिखित प्रतियाँ केरल प्रान्त में प्राप्त हुईं और सम्भव है कि उनकी पूर्ण रूप देने के लिए किसी चतुर केरलीय कवि ने अंशदान कर दिया हो । अंशदान करने वाला केरलीय वाक्यारों का वर्ग भी हो सकता है ।

1. It is not at all clear that the TSS Svapnavasavadattama is the famous Sv. attributed to Bhasa by Rajsekhar. There are in the first place citations from Sv. given in works on rhetoric are not found in the extant play. Secondly the Bhavaprakash of Sharadatanaya gives us a passage in which the Sv. is classed as a play of Prashanta type, in this passage the author gives us a sort of a synopsis of the play which reveals that the Sv. known to sharadatanaya had much in common with the TSS. Svapnavasavadatta but was not identical with it, as one important incident mentioned in the passage is not found in the TSS play. Further in his "Natakalakshanaratnakosha" Sagaranandin, gives up an extract from the Sv. which in substance but not in actual words, is found in the TSS play.

Thus it will be clear that the Sv. of this group is merely a version a stage version of the original play.

(C.R. Devadhar, Plays attributed to Bhasa
introduction / page IX - X.

2. Bulletin of School of Oriental studies 1919/ Page 233
and J.R. Asiatic Society 1921/ Page 587.
3. "भारता" संस्कृत पत्रिका वर्ष 1, अंक प्रथम / भासः एक अध्ययन बलदेव उपाध्याय, विषय प्रवेश पृष्ठ 15 की पाद टिप्पणी से उद्धृत ।

निष्कर्षतः यह कहना कथमपि असंगत नहीं कि यदि "स्वप्नवासवदत्तम्" राजशेखर द्वारा भासकृत है तो उस रचना पद्धति से साम्य रखने के कारण अन्य नाटकों के भी रचयिता भास हो सकते हैं। जहाँ तक अलंकारशास्त्रियों द्वारा उद्धृत श्लोकों के प्रासंगिक स्थल पर "स्वप्नवासवदत्तम्" के सामान्य संस्करणों में न प्राप्त होने का प्रश्न है वह बहुत महत्वपूर्ण नहीं है। लोकप्रिय होने के कारण अथवा प्रतिलिपिकारक की अनवधानतावश ऐसी स्थिति आ सकती है।

भास का स्थिति-काल

"भासनाटक समूह" के सम्स्त नाटकों के भासकृत होने से सम्बन्धित विवाद के ही सद्गुरु महाकवि भास का स्थितिकाल भी यद्यपि विवादग्रस्त रहता आया है तथापि यह अपेक्षाकृत सहज कहा जा सकता है। भास के नाटकों में कृतिषय ऐतिहासिक पुरुषों और स्थानों का उल्लेख विभिन्न कवियों तथा अलंकारशास्त्रियों द्वारा उनकी कृतियों से उद्धृत अंश हमें उनके काल-विनिश्चय के लिए सूत्र-सहित उपलब्ध कराते हैं। हम इसी बिन्दु पर चलकर [केन्द्रित होकर] विभिन्न विद्वानों द्वारा उपस्थापित धारणाओं के समीक्षण पुरस्तर विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

विद्वानों द्वारा विनिश्चित धारणाएँ : एक समीक्षण

पौरुषस्त्य एवं प्राश्यात्य विद्वानों द्वारा महाकवि भास के काल की पूर्व सीमा चतुर्थ शताब्दी ईसा पूर्व एवं परसीमा दसवीं शताब्दी निश्चित की गयी है। इन विद्वानों की धारणा में प्रमुख हैं - श्री गणपति शास्त्री, हरप्रसाद शास्त्री स्टेन्कोनो, डा० ए०पी० चैनर्जी शास्त्री, मण्डारकर, जै. गोपी, डा० ए०बी० कीथ, विन्टरनिस्, बार्नेट, सी०आर० देवधर, हीरानन्द शास्त्री, राम पिङ्गरीटी, काणे एवं पण्डित रामाकाश शास्त्री। ये सभी विज्ञान निर्धारण-सूत्रों एवं विनिश्चयों में स्वतन्त्र हैं, एकमत नहीं। समीक्षण - परीक्षण की दृष्टि से हम अब तक स्थापित मतों को तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं -

1. वह जो भास की स्थिति ईसा पूर्व चतुर्थ-पंचम शताब्दी स्वीकारता है।
2. वह जो द्वितीय-तृतीय शती निश्चय करता है।

3. इस वर्ण के विनिर्गद्यानुसार भास सातवीं अवस्था उसके पश्चात् दसवीं शताब्दी के आस-पास सम्भवतः रहे ।

प्रथम मत के उपस्थापकों में प्रमुख हैं ए.डी. पुतालकर । उन्होंने भास की नाट्य-कृतियों में अंतिम तत्कालीन समाज-संस्कृति का आकलन कर ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विस्तृत समीक्षीपरान्त वैसी स्थिति चतुर्थ-पंचम शताब्दी में स्वीकारा है । तदनुसार महाकवि भास का समय निर्धारित किया ।¹ इस मत की पुष्टि के लिए कतिपय अन्य आधार हैं -

1. भास के नाटकों में तत्कालीन नरेशों - चण्ड प्रचीत, वत्सराज उदयन, मगधपति दर्शक² और राजधानी उज्जयिनी [उज्जैन अवन्ती] लीशम्बी तथा राजगृह³ के साथ ही अन्य स्थानों - देववन, नागवन⁴ आदि का उल्लेख प्राप्त होता

1. Bhasa : A study, A.D. Pusalkar, Page 67-68.

2. [क] अस्ति राजा प्रचीतो नामोज्जयिन्याः । x x अस्त्युज्जयिनीयी राजा प्रचीतो नाम । स्वप्नवासवदत्तम् अंक-1 प 2

[ख] तत्रोदयनी राजा प्रतिवसति । x x अस्ति वत्सरा नी नाम । तस्य गुणान् भर्तृदारिकाभिलषति । - वही

[ग] अस्मार्क महाराजो दर्शकोऽ । - वही, अंक - 6

[घ] तत्र किल राजा काम्पिल्यो नाम । - वही, अंक - 5

3. [क] तस्यावन्तिराज्यत्री वासवदत्ता । x x कामेनीज्जयिनी गौ मयि तदा कामप्यवस्था गौ । - वही / अंक - 1 प 4

[ख] लीशम्बीमार्त्रं परिपालयामिति - वही / अंक - 6

[ग] श्रीः वृयताम् । राजगृहतीऽस्मि । वृत्तिविशेषवार्ध

वत्सभूमौ लाघाणकं नाम ग्रामस्तत्रोषितवानस्मि । - वही / अंक - 1

4. x x x देलायां बालकातीयेन नदीनिर्मदां तीर्त्वा देववने कनकभावात्स्य उग्रमात्रपरिच्छेदन x x x मार्गमदन्या वीर्या नागवने प्रयातो भर्ता । - प्रतिज्ञायोगन्धरायण

इन ऐतिहासिक स्थानों एवं इतिहास प्रसिद्ध नरेशों का अस्तित्व निश्चित ही तथागत गौतम के समकालीन अथवा पूर्व रहा है, उनके परचात होने की सम्भावना नहीं। पालि-साहित्य के विविध ग्रन्थों में नादकृतियों में उल्लिखित नगरों और नरेशों की स्थिति तथागत बुद्ध-कालीन वर्णित है - "धेणुवन भगधराज बिम्बिसार की सम्पत्ति रहा और उसने वह भिक्षुसंघ को दान कर दिया था। विवरणानुसार पता चलता है " यह हमारा धेणुवन x x x x इसे मैं बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसंघ को क्यों न दान कर दूँ ? x x x x मन्ते। मैं धेणुवन उद्यान प्रमुख भिक्षुसंघ को दान दे रहा हूँ।" राजगृह बुद्धकालीन नगर था क्योंकि वहाँ भगवान बुद्ध के विहार करने का उल्लेख मिलता है - "एक समय भगवान बुद्ध राजगृह में विहर रहे थे।" बाविर ब्राह्मण के सोलह शिष्य प्रतिष्ठान से भगवान बुद्ध के उस समय विहार-स्थल आवस्ती हेतु प्रस्थित होकर माहिष्मती, उज्जयिनी, गोन्ध, विदिशा, वनसाहव्य, कोशाम्बी व साकेत होते हुए वहाँ पहुँचे थे।² अतः भास की स्थिति बुद्ध पूर्व सम्भव नहीं कही जा सकती है अर्थात् छठी शताब्दी से पूर्व एवं चतुर्थ शताब्दी के परचात उनकी स्थिति होनी चाहिए।

1. अथ वो रज्जो मागधस्य तेनियस्त एतदहोति - "इदं वो अम्हाकं धेणुवनं उय्यानं गामती मेव अचिदुरे x x मन्ननाहं धेणुवनं उय्यानं बुद्धप्पमुत्तं भिक्खुसंघस्त ददेय्यं"ति। अथ वो राजा मागधी तेनियो बिम्बिसारो सोवण्णमयंभिकारं गहेत्वा भगवतो ओणोजेति - "एताहं मन्ते धेणुवनं उय्यानं बुद्धप्पमुत्तं भिक्खुसंघस्त दम्मी"ति। महावग्ग 1.16.59
2. अलकस्स पतिद्वानं पुरिमं माहिस्सति तदा।
उज्जेनिं वापि गोन्धं वेदितं वनसव्वयं ॥
कोसम्भिं वापि साकेतं तावत्तिथं व पुरत्तमं।
तेत्तयं कपिलवत्थुं कुत्तिनारं व मन्दिरं ॥
पावं व भोगनगरं वेसालिं मागधं पुरं।

2. डा० ए०बी०की० तथा "भासनाटकसमूह" का कर्ता "भास" को नकारने वाले स्वयं मोर्गेन्स्टेनने का मत है कि शुद्रक रचित "मृच्छकटिकम्" वास्तवत्त पर आधारित उसी का एक बृहत्तर रूप है। यह तथ्य इस आशय का संकेत है कि भास की स्थिति शुद्रक से पूर्व होनी चाहिए। "काव्यालंकार सूत्रवृत्ति" में वामन द्वारा तथा "काव्यादर्श" में दण्डी द्वारा "मृच्छकटिकम्" के उद्धरण दिये गये हैं। आचार्य दण्डी का काल सातवीं शताब्दी प्रायः स्वीकार्य है, इसलिए महाकवि भास सातवीं शती से पूर्व रहे होंगे। "मृच्छकटिकम्" के नवमंकि में "वसन्तसेना" की हत्या के लिए आर्य वास्तवत्त को ब्राह्मण होने के कारण प्राणदण्ड न देकर राष्ट्र निर्वासन का दण्ड दिया जाता है - मनु का कथन है कि "यह ब्राह्मण पातकी होकर भी वध-योग्य नहीं है, किन्तु क्षतिरहित सम्पत्ति समेत इसको इस राष्ट्र से निर्वासित कर देना चाहिए"।² यह निर्णय सत्यतः मनुस्मृति-व्यवस्था के पूर्णतः अनुकूल है - "तर्कपातकों का भागी होने पर भी ब्राह्मण का वध नहीं करना चाहिए अथवा धन-सहित इसे राष्ट्र से निर्वासित कर देना चाहिए"।³

1. [क] भो. ह्यं हि नाम पुंस्वस्यातिहासनं राज्यम्

न गणयति पराभवं कुतश्चिद्वरति ददाति च नित्यमर्थजातम् ।

नृपतिति निकाममायदशी विभवक्ता समुपास्यते जनेन ॥

मृच्छकटिकम् . अंक 2/7 [वामन द्वारा उद्धृत]

[ख] लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवान्जनं नमः ।

असत्पुस्वसेधैव दृष्टिर्विफलतां गता ॥

मृच्छकटिकम् अंक 1/34 [काव्यादर्श में उद्धृत]

2. अयं हि पातकी विप्रो न वध्यो मनुरब्रवीत् ।

राष्ट्रादस्मात्तु निर्वाप्त्यो विभवरक्षितः सह ॥

मृच्छकटिकम् अंक 9/39

3. न जातु ब्राह्मणं हन्यात् तर्कपापेष्वपि स्थितम् ।

राष्ट्रदेवं बहिः कुर्यात् समग्रधनमक्षतम् ॥

मनुस्मृति

"मृच्छकटिक" की रचना मनुस्मृति के अनन्तर हुई होगी । "मनुस्मृति" का रचनाकाल विष्णु से पूर्व द्वितीय शताब्दी माना जाता है और इसके पीछे "मृच्छकटिक" को मानना होगा । भासकवि के "दरिद्र वासुदत्त" और शुक्र के मृच्छकटिक में अत्यन्त समानता पायी जाती है । x x x x यदि "मृच्छकटिक" को भास के स्वक के अनुकरण पर रचा गया मान लें, प्रबुद्धमि निश्चयतः वासुदत्त की है, तो शुक्र का समय भास के पीछे अर्थात् तीसरी शताब्दी के पीछे होना चाहिए ।¹ "मृच्छकटिक" के नवम अंक में बृहस्पति तथा मंगल दोनों ग्रहों को परस्पर विरोधी कहा गया है - "मंगलं ग्रह जिसके विपरीत है ऐसे शिबित बृहस्पति ग्रह के समीप धूमकेतु का उदय बृहस्पति के लिए अनिष्टकर होता है ।"² यहाँ अकारण्यी मंगल को वासुदत्त स्व बृहस्पति का विरोधी कहकर वासुदत्त की दरिद्रता तथा उसके आभूषण पतन को धूमकेतु का उदय बताया गया है । बृहज्जातकार वराहमिहिर इन दोनों ग्रहों को मिश्रित निरूपित करते हैं ।³ वराहमिहिर का परकीर्ण ग्रन्थकार मंगल एवं बृहस्पति ग्रहों को परस्पर अनु नहीं कह सकता । अतः यह सिद्ध है कि शुक्र का आविर्भाव वराहमिहिर के पहिले हुआ था । वराहमिहिर की मृत्यु 589 ई० में हुई ।⁴ लिए शुक्र का समय छठी शताब्दी के पहिले होना चाहिए । इस विवेचन से स्पष्ट है कि भास शुक्र से पूर्वकी है । "कीमुदीमहोत्सव" नाटक में "अविमारक" के द्वारा अविमारक एवं कुरंगी के प्रणय - व्यापार का स्कीत करने का अर्थ है । "कीमुदीमहोत्सव" की लेखिका भास के नाटक "अविमारक" पूर्णतः भिन्न रही । इस नाटक में

1. गुप्त साम्राज्य का इतिहास: भाग 2, वासुदेव उपाध्याय, पृष्ठ 9।

2. अद्-गारकचित्स्थ प्रक्षीणस्य बृहस्पतेः ।

ग्रहायम्बरः पार्श्वे धूमकेतुरिवोत्तिष्ठः ॥

मृच्छकटिक, अंक 9/33

3. जीवेन्दुष्कराः कुजस्य सहृदः । - बृहज्जातकार 2/16

4. श्रीमकमिव बन्धुमती कुमारमविमारकं कुरंगीव ।

मगध राज्य के अधिकार विषयक किसी कलह को आधार बनाया गया है ।

साथ ही इस नाटक में "वत्सराज" तथा उसके "सुन्दरपाटल" नामक अश्व की चर्चा की है । "सुन्दरपाटल" अश्व की चर्चा "प्रतिज्ञायौगन्धरायण" ¹ में भी है ।

इस प्रकार यह रचना भास के पश्चात् होनी चाहिए । "कौमुदीमहोत्सव" की लेखिका विज्जिका सम्भवतः पाँचवीं अथवा छठीं शताब्दी में रही होगी । ²

भास का स्थिति-काल इससे पूर्व होना चाहिए ।

3. बाणभट्ट ने "हर्षचरित" में भास ³ के नाटकों का उल्लेख किया है ।

पुनः उन्होंने कवियों का दर्प ⁴ हरण करने वाली कृति "वासवदत्ता" का भी नामोल्लेख "हर्षचरित" के प्रारम्भ में किया है । "वासवदत्ता" के लेखक सुबन्धु हैं ।

कविराज द्वारा बाण तथा सुबन्धु को कुटिल-काव्य ⁵ का रचयिता के रूप में

उल्लेख किया गया है । सुबन्धु ने अपनी कृति "वासवदत्ता" में उद्योतकर ⁶ का

नामोल्लेख कर उनका स्मरण किया । सुबन्धु का नामोल्लेख प्रथमतः बाण द्वारा

1. तदो कीडाअमाणी विअ अन्तच्छन्दानुवर्तिना सुन्दर पाउडेण अस्तेण
अत्तामिप्पाआदो - - - - - ।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण अंक - 1

2. x x x The author of this play must have been Dandin's
Avantisundarikatha and Bhasa's Avimaraka where we find
stories of Sannaka and Avimaraka x x x Vijjika or real
author must have flourished for earlier than 5th or 6th
centuries.

- History of classical Sanskrit literature
M. Krishnamachari Page 600

3. सूत्रधारकृतारम्भेर्नाटिर्बहुभूमिकैः । - हर्षचरित

4. कवीनामगलद्वर्षो नूनं वासवदत्तया ।

सत्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम् ॥ - हर्षचरित

5. सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः ।

क्वोक्तिमार्गनिपुणः चतुर्थो विद्यो न वा ।

- गुप्त साम्राज्य का इतिहास, वासुदेव उपाध्याय
पृष्ठ - 95

6. न्यायस्थितिमिव उद्योतकर स्वस्था ।

बुद्धसंगतिमिव अलंकारभूषिताम् ॥

हुआ है। परिणामतः बाण सुबन्ध के परवर्ती होते हैं। सुबन्ध द्वारा उल्लिखित उद्योतकर का स्थितिकाल लगभग पाँचवीं शती मान्य है। अर्थात् सुबन्ध उद्योतकर के परवर्ती हैं। सुबन्ध की घर्षा बाण ने किया अतः वह उनसे परवर्ती। अर्थ यह है कि सुबन्ध बाण के पूर्ववर्ती एवं उद्योतकर के परवर्ती हुए। बाण ने "भास" का नामोल्लेख किया है अर्थात् ये उनके भी परवर्ती हैं। उद्योतकर का काल पाँचवीं शताब्दी, सुबन्ध का उनके पश्चात् और बाण का स्थितिकाल उनके पश्चात् निश्चित होता है। अर्थात् यह छठी शती के उत्तर भाग में रहे होंगे और भास पूर्ववर्ती अर्थात् पाँचवीं शती तक या उससे पूर्व हुए होंगे।

2. द्वितीय मत द्वितीय -तृतीय शताब्दी का है। इस मत के प्रथम सूत्रधार डा० ए०वी० बैनर्जी शास्त्री हैं। उनकी इस स्थापना के आधारों में प्रमुख हैं -

॥क॥ प्रतिमा नाटक में सन्यासी वैश्याधी रावण अन्य शास्त्रों के साथ कामशास्त्र विषयक अपने ज्ञान का उद्घोष नहीं करता। इसका अर्थ है कि भास को वात्स्यायन प्रणीत कामशास्त्र की जानकारी नहीं थी। वात्स्यायन का स्थितिकाल द्वितीय शतक का ईसा के अन्त है। अतः भास का समय इससे पूर्व होना चाहिए।

॥ख॥ कौटिल्य का अर्थशास्त्र ईसा-पूर्व तीसरी शताब्दी की रचना है, नाटक में ऐसे उद्धरण हैं जो भास को कौटिल्य से पूर्व होने का स्केत देते हैं।

॥ग॥ भास के नाटकों में पाणिनीय व्याकरण की अवहेलना कर अपाणिनीय प्रयोग मिलते हैं। पाणिनि, कात्यायन और पतन्जलि का समय क्रमशः ईसा पूर्व चौथी, तीसरी एवं दूसरी शती है।

॥घ॥ इसी प्रकार मनुस्मृति का लेखनकाल ईसापूर्व दूसरी शती है। भास के नाटकों में मानवशास्त्रीय उल्लेख हैं। भास इससे परवर्ती है। इस प्रकार उनका निष्कर्ष है कि भास ईसा पूर्व द्वितीय - तृतीय के मध्य स्थित थे।

3. तृतीय मत सातवीं शताब्दी का है। इस मत के प्रवर्तक डा० बार्नेट हैं। उनकी इस धारणा का आधार भासनाटकयुग का रचनाकार भास को अस्वीकारना तथा उन नाटकों को केरल के परम्परागत नाटक अभिनेता वाक्यारों की रचना मानना है। उनके मतानुसार सातवीं शती के महेन्द्रवीरकिशोर रचित "मत्तविलास प्रहसन" की भाषा से इन नाटकों की भाषा में समानता के दलन होते हैं। नाटकों के भरतवाक्य में प्रयुक्त राजसिंहः किसी केरलीय नृपति की उपाधि है। "राजसिंह" उपाधि धारक नृपों की कोई ऐतिहासिक परम्परा प्राप्त नहीं होती। कालिदास व बाण आदि कवियों द्वारा "भास" का नामोल्लेख किया जाना यह संकेत है कि वह बाणादि से पूर्व थे। "भास" का उल्लेख करने वाले कवि सातवीं शताब्दी से पहिले स्थित रहे हैं। इस कारण महाकवि भास निश्चय ही सातवीं शती से पहिले हुए।

कालिदास का समय ईसा पूर्व पहिली सदी में मानना युक्ति संगत है अतः भास उससे अधिकतर काल के ठहरते हैं। विवेचित मतों से यह तथ्य स्पष्ट है कि भास की ईसा के बाद निश्चित करना युक्ति-संगत नहीं है। हम अब इसी परिप्रेक्ष्य में "भासनाटकयुग" की नाट्यकृतियों के बाह्य एवं अन्तः साक्ष्यों का समीक्षण कर निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास करेंगे।

बाह्य साक्ष्य

1. महाकवि कालिदास द्वारा सौमिल्ल आदि के साथ सर्वप्रथम महाकवि "भास" का नामोल्लेख हुआ है - "प्रयित्यज्ञतां भाससौमिल्लकप्पिप्रादीनां प्रबन्धानांतकुम्भ कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदास कृतौ बहुमानः।

॥ मालविकाग्निमित्रम् ॥ प्रथम अंक

2. बाणभट्ट द्वारा "हर्षचरित" में "सूत्रधारकृतारम्भनटिकैर्बहुभूमिकैः" आदि का उल्लेख कर भास नाटकों की विशेषताओं को स्पष्ट किया गया है।

3. पाँचवीं शती के दिङ्नाग रचित "कुन्दमाला" में "पडिमागदी

-
1. Mignaga lived at Aralapur, sometime earlier than the 5th century AD. His Kundamala' a play in 6 Acts describes the later history of Rama after the coronation that is, the story of banishment of Sita and her discovery and reunion.

महाराजो" प्रतिमागतो महाराजः॥ उल्लेख मिलता है । दशरथ की प्रतिमा का उल्लेख "प्रतिमा" नाटक के अतिरिक्त रामावधानक किसी भी कृति में उपलब्ध नहीं है । "कुन्दमाला" का प्रस्ताव निश्चय ही भासकृत "प्रतिमा" से अवगत रहा । इसी आधार पर उसने "प्रतिमागतो महाराजः" का उल्लेख किया होगा ।

4. कुरुक रचित "मुष्कटिकम्" प्रकरण का मूल आधार भास का नाटक "वासुदत्त" है । कथा संयोजन तथा रचना-पद्धति भिन्न होते हुए भी अत्यधिक समानता है । दूसरे शब्दों में यह वासुदत्त का ही परिवर्धित रूप कहा जा सकता है । आः कुरुक भास का परवर्ती नाटककार है ।

5. भासकृत "प्रतिज्ञायोगन्धरायण" तथा अवधी-रचित "बुधवरित" में क्रमशः श्लोक 1/18 और 13/60 के माधकथ्य में समानता परिलक्षित¹ होती है ।

6. वामन ने "काट्यालंकारसूत्रवृत्ति" में "स्वप्नवासवदत्तम्" "वासुदत्त" तथा "प्रतिज्ञायोगन्धरायण" के श्लोक² को उद्धृत किया है । वामन का स्थिति-काल आठवीं शती है ।

7. कौटिल्य-अर्थशास्त्र 10.3 एवं प्रतिज्ञायोगन्धरायण 4.2 में एक

समान शब्द मिलते हैं

1. काष्ठादग्निर्जायते मध्यमानाद्
भूमिस्तोयं धन्यमाना ददाति ।
सौरसाहानां नास्त्यसाध्यं नराणां
मागारिषाः सर्वयत्नाः फलन्ति ॥ - प्रतिज्ञायोगन्धरायण 1/18

का-ठं हि मन्थन् लभते हुताग्निं
भूमिं धनं विन्दति वापि तोयम् ।
निर्वन्धिनः लिङ्गनाट्यसाध्यं
न्यायेन युक्तं च कृतं च सर्वम् ॥ - बुधवरित 13/60

2. अरच्यन्तुः सुगौरेण वातायिनेन भाग्मिनि ।
काङ्क्षुष्यन्तर्धनेन साक्षुषार्तं मुने कृतम् ॥ स्वप्नवासवदत्तम् 4/8
युतां बलिं दति मदनदेहलीनां
हंसय सारसगणधय विमलपद्मः ।
तारुण्यं पुष्कलिस्तथाह्वरति,
बीजाजलिः पतति कीटमुखावलीटः ॥
नयं अराधं सलिलः सपथं
संसृजतं दमस्तौत्तरीयम् ।
तैत्तिरिय मा भून्नरकं सगच्छेद्,
यो भूतिपिण्डस्य कृते न पुण्यम् ॥ - प्रतिज्ञायोगन्धरायण 4/2

आदि में स्वयं निष्णात होने की धीवना करता है । उन शास्त्रों में मुख्यतः
गौतम धर्मसूत्र, बार्हस्पत्य अथर्वशास्त्र मेधातिलिखि का न्यायशास्त्र एवं महेश्वर योगशास्त्र
आदि हैं । रावण उन शास्त्रों की विद्याओं का साधिकारी विद्वान् कहता¹ है ।
वर्षित शास्त्रों का समय लगभग यतुर्थ से छठवीं शती ईसा पूर्व माना जाता है ।²

2. "स्वप्नवासवदत्तम्" "प्रतिज्ञायागन्धरायण" नाटकों में वर्णित
वत्सराज उदयन, उद्योत, दक्षक आदि नृपति एवं कौशाम्बी, उज्जयिनी मगध राजनगर
ऐतिहासिक साक्ष्यानुसार छठी शताब्दी ईसा शताब्दी ईसा पूर्व में रहे हैं । इनकी
प्रसिद्धि इतने भी पूर्व ही प्रारम्भ हुई होगी । कौशाम्बी एवं उज्जयिनी प्रमुख
नगरस्थ में ईसा पूर्व द्वितीय शती तक स्थिरता प्राप्त कर चुके थे ।³ मास की
स्थिति इसके पश्चात् ही होनी चाहिये ।

1. श्रीः । काश्यपगोत्रोऽस्मि । साह-गोपाई-य वेदमधीये, मानवीयं
धर्मशास्त्रं, महेश्वरयोगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं मेधातिलिखेन्याय
शास्त्रं, प्रायेतर्त आहकल्पं च ।

प्रतिज्ञानाटकम् अंक 5

2. धर्मशास्त्र का इतिहास : ज्युन यीवे का-य्य, हिन्दी अनुवाद ।

पृष्ठ 14 - 16

3. काफी समय बाद तक उज्जयिनी बौद्धधर्म का केन्द्र रही । द्वितीय शताब्दी
ईसा पूर्व लंकाधिराज दुदुगामधि महास्तूप नामक विहार की आधारशिला
रखने का जो महोत्सव किया, उसमें भाग लेने के लिए उज्जयिनी के
दक्षिणगिरि-विहार से पालीस हजार भिक्षु गये थे ।

महावंश [हिन्दी अनुवाद] पृ. 29-35

कौशाम्बी के धीविताराम के तीस हजार भिक्षु उत्थम्मरविक्षु नामक भिक्षु
की अध्यक्षता में लंका में अनुराधपुर के महास्तूप विहार के शिलान्यास महोत्सव
में भाग लेने के लिए द्वितीय शती ई. पूर्व लंका गये थे ।

3. "प्रतिमा" नाटक में ही मगध की राजधानी "राजगृह" एवं धेनुवन तथा नागवन उल्लिखित हैं। राजा बिम्बिसार वहाँ प्रथम गृह बनाकर रह रहा था इसलिए इसका नाम "राजगृह" पड़ा था। इस राजगृह के लिए "मगधपुर" तथा "बिम्बिसारपुरी" शब्द भी व्यवहृत होते थे।² धेनुवन बुद्धप्रभु मिथुन के लिए बिम्बिसार ने दान कर दिया था³ और स्वयं बुद्ध स्वीकारा था। बिम्बिसार का राजकाल⁴ 544 ई. पूर्व से 493 ई. पूर्व तक माना जाता है। उसका पुरा शासनकाल 51 - 52 वर्ष तक रहा। उसने धेनुवन का दान और बुद्ध को नियमित ही राजकाल के अन्तिम वर्षों में किया होगा तथा वह समय पाँचवीं शती का उत्तरार्द्ध कहा जा सकता है। "राजगृह" एवं "धेनुवन" मगधान बुद्ध से सम्बद्ध होने पर कुछ समयोपरान्त लोकव्याप्त हुए होंगे। इसमें कम से कम अर्ध शताब्दी तथा अधिक समय व्यतीत हो सकता है। तभी भारत में नाटक का विषय बनाया होगा।

4. "प्रतिमा" नाटक में स्वर्गीय नृपतियों⁵ की प्रतिमा - स्थापना विषयक एक परम्परा का निर्देश मिलता है। उस परम्परा का प्रवर्तन सम्भवतः शिशुनागवंशी नृपतियों के शासन-काल में हुआ क्योंकि पुरातत्त्वविदों ने मथुरा में इस वंश के नृपों की प्रस्तरमूर्ति के मथुरा में खनन से प्राप्त होने का उल्लेख किया है। शिशुनागवंश का राजतकाल ईसा पूर्व 430 से ईसा पूर्व 364 वर्ष तक⁶ रहा है।

1. बुद्धिस्ट रिकार्ड्स आफ दि वेस्टर्न वर्ल्ड : वोल्यूम 2 , पृष्ठ 145

2. सुर्मंगलविलसिनी : भाग -1, पृष्ठ 132

3. समर्थ उलू गोतम राजा मगधो तेजियो बिम्बिसारो सपुत्रो समरियो समरितो सामद्यो पाषेहि गतो । दीर्घनिकाय कूटदन्तसुत्त

4. The age of Imperial Unity : R.C. Majumdar / Page 39

Pharati Vidya Bhavan, Bombay, IV Ed. 1969

5. भारत : भवन्तं किंचित् पुच्छामि । परमाणानामपि प्रतिमाः स्थापयन्ते ।

देवकुलिकः - न उलू अतिक्रान्तानामेव । - प्रतिमा अंक 3

6. The Age of Imperial Unity : R.C. Majumdar, Page -38

भारती विद्याभवन, धर्मपुर -

प्रतिमा मन्दिर में बालुकाकण छोड़ने का¹ भी उल्लेख इस नाटक में प्राप्त होता है और बालुका डालने के इस विधान की प्रतिष्ठा केवल आपस्तम्ब सूत्रों में की गयी है। आपस्तम्बसूत्रों का² रचनाकाल 600 ईसा पूर्व के पश्चात् नहीं हो सकता।

बाह्य तथा अन्तः साक्ष्य दोनों परीक्षणों के उपरान्त हम इस तथ्य से अवगत होते हैं कि भास का प्रथम उल्लेख करने वाले महाकवि कालिदास और अन्तिम काव्यशास्त्रीय वामन सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। भास के नाटकों में सामाजिक व राजनीतिक जिन परिस्थितियों का आभास मिलता है, वह प्रायः चौथी से छठी शताब्दी ईसा पूर्व तक के परिप्रेक्ष्य की प्रतीति कराती है। इसी के साथ सबसे उल्लेखनीय तथ्य है कि भास के नाटकों का उपजीव्य चार वर्गों में विभाजित परिलक्षित होता है - ॥1॥ रामकथा ॥2॥ महाभारतकथा ॥3॥ कृष्णकथा ॥4॥ लोककथा। अष्टावर्षी मान्यताओं के अनुसार रामायण एवं महाभारत सम्भवतः ईसा पूर्व छठी शताब्दी पर्यन्त अपनी मूल स्थिति में विद्यमान रहे। उनके नाटकों में व्यवहृत प्राकृत का स्वरूप कालिदास द्वारा प्रयुक्त प्राकृत रूप से भिन्न तथा प्राचीनतम परिलक्षित होती है। सम्भवतः सामाजिक-परिदृश्य के अनुकूल धीरे-धीरे प्राकृत रूप का सरलीकरण हुआ है।

इस आकलन के उपरान्त यह स्वीकारना असंभव नहीं कहा जा सकता कि महाकवि भास कवि कालिदास के पूर्व रहे एवं अपनी रचनाओं का प्रणयन उन्होंने छठी शती ईसा पूर्व से पहिले किया। यह सम्भावित स्थितिकाल ईसा पूर्व षट्पुर्णी शताब्दी के पूर्व भाग के मध्य से द्वितीय शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक होना चाहिए।

1. अवसक्तभाल्यदामशौभिनि द्वाराणि, प्रकीर्णा बालुकाः। कस्य न उतु

दैवतस्य स्थानं भविष्यति।

- प्रतिमा अंक 3

2. धर्मशास्त्र का इतिहास : अर्जुन चौबे काश्यप ॥अनुवादक॥ पृ. 14 - 16

x x x x x x x

ईसा पूर्व छठी शताब्दी से पहिली शताब्दी पूर्व तक धर्म सूत्रों का रचनाकाल है।

- गुप्त साम्राज्य का इतिहास, वासुदेव उपाध्याय, पृ. 115

उत्तर भारत की विभूति : भास

भास महाकवि थे । कवि स्वयम् कहा जाता है, उनकी सुष्ठु प्रमुक्तः "सत्यं शिवं सुन्दरम्" प्रतिष्ठापित से प्राणिमात्र के अन्तर्जगत की भावधर कर स्थूल जागतिक - स्वल्प को ध्वल-आभा से व्याप्त करने की साधन सामग्री सँजोती है । अतः कवि के देख की कोई सीमा नहीं होती । हमारी भारतीय परम्परा में काव्य का प्रथम और प्रमुख रूप यज्ञ-सम्प्राप्ति है ।¹ भास ने भारत की किस सीमा में किस भूमि पर, किस प्रान्त अथवा जन्यद में काव्यसाधना का पीठस्थल प्रतिष्ठित किया, यह सतर्था विवादित विषय आज तक बना हुआ है एवं बना रहेगा । किन्तु उनकी प्रतिभा एवं यज्ञ से प्रस्फुटित ज्योति उनके कवच-देह पर यज्ञ-तन्त्र अवश्य दिखायी देती है । उन स्थलों के अभियोजित घुत्त पर केन्द्रित होकर हम भास के जागतिक अस्तित्व का मूल-बोध करना चाहेंगे ।

"भासनाटकयुग्म्" की कथावस्तु का उत्स भारतीय वाङ्मय के सार्वभौम साहित्य से अधिगृहीत है, अतः किसी देश विशेष अथवा क्षेत्रभूमि के प्रति उनकी आस्थादृष्टि का आभास नहीं प्राप्त होता । उनके समग्र नाट्य साहित्य में चित्रित ऐतिहासिक तथा भौगोलिक परिवेश, सामाजिक, सांस्कृतिक मर्यादा और धार्मिक परिदृश्यों का समीक्षण हमें एक संक्षिप्त प्रदान करता है जो भारत के उत्तर भाग की ओर स्पष्टतः पहुँचाता है । भास के पाँच नाटकों - वासुदेव, प्रतिभा मध्यम व्यायोग, द्रुतघटीत्कय व ऊर्महं-ग को छोड़कर शेष आठ नाटकों में भरतवाचय-स्य प्रयुक्त श्लोक से एक सार्वभौम सत्ता तथा भासक का आभास² मिलता

1. काव्यं जगतिर्धृते व्यवहारविधे विदितरक्षये ।

सद्यः परनिर्वर्तयि कान्तासिम्पतयोपदेक्षयुजे ॥

काव्य-प्रकाश 1/2

2. हमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।

महीमेकातपत्राद्-कां राजतिहः प्रजास्तु नः ॥

x x x x x

स्वप्न) अंक 6/19

हमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।

महीमेकात पत्राद्-कां राजतिहः प्रजास्तु नः ॥

x x x x x

द्रुतवाचयम् अंक 5 6

हमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।

महीमेकातपत्राद्-कां राजतिहः प्रजास्तु नः ॥

बालचरितम् . अंक 5/20

हे - "सागर पर्यन्त विस्तृत उस पृथिवी पर हमारे राज्ञेष्ठ एकच्छत्र शासन करे, जिस पृथिवी के लिए हिमालय तथा विन्ध्य पर्वत कुण्डल - सदृश कर्णभूषण जीभा पा रहे हैं ।" यही अर्थ-बोध सात नाटकों के भरतवाक्यों में समान रूप से किंचित अन्तर के सहित मिलता है, परन्तु "राजसिंह" शब्द के प्रयोग और "प्रशास्तु नः" पद-प्रयोग में कथमपि अन्तर अथवा परिवर्तन नहीं । ऐसा सार्वभौम शासक दक्षिण भारतीय इतिहास में नहीं उल्लिखित है । "हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्" एवं "महीमेकातपत्राद्-कां" पदों का प्रयोग "स्वप्नवासवदत्तम्" "दूतवाक्यम्" और "बालचरितम्" में हुए हैं । इन नाटकों के कथानकों का केन्द्रविन्दु धीरोदात्त-गुणोपेत चरित नृपति है । ईसा पूर्व छठी शती पर्यन्त कौशाम्बी-नरेश वत्सराज उदयन उत्तर-भारत का सार्वभौम शासक कहा जा सकता है । इसी प्रकार महाभारत कालीन धर्मराज युधिष्ठिर की यज्ञगाथा जनमानस को अमृततोष प्रदान करती आ रही है । यह यज्ञपुस्तक उत्तर-भारत के आभूषण रहे जिनके चरित का अनुगायन "भास" ने अपने नाटक का विषय बनाया । अपनी कल्पना के अनुरूप उन्हें या तो भारत-अन्य सीमा में कोई चरित उपयुक्त नहीं लगा अथवा उधर उनकी अभिरुचि ही न थी । अपना ही ऐतिहासिक अथवा सामाजिक-परिघेय मानस को प्रभावित करने का कारण बनता है, दूरवर्ती नहीं । निश्चित ही भास उत्तर-भारत के ही किसी स्थान को गौरवान्वित करने वाले रहे ।

1. इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः । - प्रतिज्ञा अंक 4/25

x x x x x x

इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः । - अविमारक अंक 6/22

x x x x x x

तथा लक्ष्म्या समायुक्ता राजा भूमिं प्रशास्तु नः । - प्रतिज्ञा अंक 7/15

x x x x x x

इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः । - अभिषेक अंक 6/35

x x x x x x

इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः । - पंचरात्रम् अंक 3/26

x x x x x x

राजा राजगुणोपेतो भूमिमैकः प्रशास्तु नः ।

"प्रतिमा" तथा "अभिके" दोनों ही रामायणान्तर्गत नाटक हैं ।
 दोनों में लंका-विजय वर्णित है परन्तु "रामेश्वरम्" का कहीं उल्लेख नहीं ।
 सम्भवतः इस स्थान का उल्लेख करना अभीष्ट न था अथवा उनको दक्षिण भारतीय
 स्थलों का ज्ञान ही न रहा । इसके विपरीत उत्तर भारत स्थित स्थानों के
 नामोल्लेख है उनका सम्पूर्ण नाट्य
 साहित्य भरा पड़ा है । मथुरा, अयोध्या, काशी, मगध,
 उज्जयिनी, पाटलिपुत्र, कौशाम्बी, राजगृह, वाण्डववन, लाक्षागृह और वृन्दावन
 आदि स्थानों। एवं गंगा, यमुना तथा सरयु आदि पवित्र

1. [क] अथ । प्रसुप्ता मथुरायां सर्वो जनः । x x निष्क्रान्तोऽस्मि मथुरायाः ।

x x ननु निगता नन्दगोपः । यावदहमपि मथुरामिव पश्यामि ।

- बालचरित अंक - 1

[ख] तोषत्नेहतया वृक्षाणामभितः कल्पयोधया भविष्यम् । x x यद्यमप्यिच्छाय
 महाराजविनाशमुदकं निष्फलमाज्ञां परिवहन्नयोध्यां प्रवेक्ष्यति कुमारः ।

- प्रतिमा अंक - 3

x x x x x x x
 अयोध्यामद्वीपिना भ्राता च वज्रिताम् ।

पिपासातृणानामिच्छायां नदीमिव ॥ - प्रतिमा अंक 3/10

x x x x x x x

नायोध्या तं विनायोध्या सायोध्या यत्र राघवः ।

- वही / 3/24

[ग] तीवीरराज काशिराजौ स्वामिनो भगिनी पतितौ । - अविमारक अंक - 1

x x x x x x x

कौशाम्बी मार्गं परिपालयामीति । - स्वप्नवासवदत्तम् अंक - 6

x x x x x

अस्मत्सम्बन्धो मागधः काशिराजो,

वाङ्मनः तीराद्वीपेयिलः सुरसेनः । - प्रतिका 2/8

राजगृहे दत्तमूल्या कालवनेन मुहुर्तदुर्बलाः । - वही 3/1

x x x x x

[घ] न तु जगृहे सुप्तान् प्राप्नुवन् दहन्ति निजाचराः । - द्रुतघटी 1/47

x x x x x

एतस्मिन् वृन्दावने प्रकामं पानीयं पीत्वा हृस्मान् कुर्वन्त्यास्तु गोपनम् ।

- बालचरित अंक - 3

x x x x x

पुच्छाग्निं भुजगाहति प्रणयिनं यस्तपितः वाञ्छये ।

- द्रुतघटीकव 1/22

नदियों¹ , वेणुवन , नागवन आदि के अतिरिक्त हिमालय , विष्णु ,

1. [क] गान्धारि] तदागम्यताम् । गंगाकुलमेव यास्यावः ।

- दूतधटौत्कय ओं - ।

x x x x

सम्पगाह गंगोपस्पर्शनाद् धीतकल्मषाद् गेऽङ्गाराजः ।

x x x x पंचरात्रम् . ओं - ।

गंगायमुनयोर्मध्ये कुन्दीव प्रवेक्षिता ॥

- प्रतिमा ओं - 3/16

x x x

[ख] निःपक्षित्यालयुधं भयचकितकरिप्रातर्विद्विताम्भो ,

गम्भीरं तिनग्धनीरं हृदमुदधिनिर्भं क्षीमयन् सम्प्रविश्य ।

गोपीभिः शीकृताभिः प्रियहितवर्त्मैः पेक्षितवीर्यमानः ,

कालिन्दीधातरवतं भुजगतिबलं कालियं ध्वंशयामि ॥

- बालचरित ओं 4/2

x x x x

स्तितातराभुग्नदुकूलका न्तिद्रुतेन्द्रनीलप्रतिमानवीचिम् ।

इमामहं कालियधूमधुमां सान्तापिषाग्निं यमुनां करोमि ॥

- वही - ओं 4/4

x x x x

अये इयं भगवती यमुना तथैव स्थिता । यावद् पश्यामामि ।

निष्क्रान्तोऽस्मि यमुनायाः ।

- वही . ओं - ।

[ग] सावशेष प्रत्युषायां रजन्वां वाहनतृषायां वेलायां

बालुकातीयेन नदीं नर्मदां तीरतवां वेणुवने कलत्रमावास्थ

छत्रमात्रपरिच्छदेन गजयुधविमर्दं योग्येन - - - - ।

- प्रतिमा ओं - ।

मलय¹, केलाञ्ज आदि पर्वतों के वर्णन का स्पष्ट संकेत है कि कवि को उत्तर भारतीय भूगोल का समुचित ज्ञान था परन्तु दक्षिण भारतीय भूगोल का अपेक्षाकृत अल्पज्ज्ञान था अथवा नहीं था । इन अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर भास को उत्तर भारत का निवासी स्वीकारने का साहस सम्भव है ।

१०।क। प्रावसन्ध्या कुक्षुन्तरेषु गमिता रनातं पुनर्मानसे ।

भूपो मन्दरकन्दरान्तरतटेवामादितं यौवनम् ।

क्रीडार्यं हिमवद्गुहासु परिता दृष्टिदयं तलीभिता ।

पाश्यामी मलयस्य यन्दननगान्मध्याह्ननिद्रासुखान् ॥

-अभिषारक, अंक 4/10

११। किं मेधा निन्दन्ति कृपतनिगुणीकृताः पक्ताः ।

निर्घातिस्तुमुलस्तकृतिभयः किं दायी वा मही ।

किं मुञ्चतमन्त्रिणावधूतवपस्त्रुवधो मिमालाकुलं ।

अहं मन्दरकन्दरोदरदरीः संहृत्य वा सागरः ॥

- उत्सर्गम्, अंक 1/15

१२। जित्वा त्रैलोक्यमाजौ सतुरदनुकृतौ यन्मया गच्छीन

ज्ञान्त्वा केलासमीपं स्वगणपरिकृतं साकमाकम्प्य देव्या ।

तथ्यथा तस्मात् प्रसादं पुनरगस्तया नन्दिनानाहतत्वाद्

दत्तं जप्तं च ताम्यां यदि कपिपिकृतिच्छदमना तन्मम स्यात् ॥

- अभिषेक, अंक 3/12

१३। विन्द्यमन्दरसारोऽयं बालः पद्मदलैश्वरः ।

गमै यथा पुतः श्रीमानहो धैर्यं हि यो धितः ॥

- बालचरितम्, अंक 1/12

१४। आपृच्छ पुत्रकृतकान् हरिणान् द्रुमांश्च ।

विन्द्यं वनं तव सखीदैयिका त्ताश्व ।

वत्स्यामि तेषु हिमवद्गिरि काननेषु

दीप्तेरिवोषधिष्वपि स्पर्शयितुम् ॥

- प्रतिमा, अंक 5/11

द्वितीय - अध्याय

रामायणीय-कथाश्रित भास के नाटकों का विवरण

द्वितीय अध्याय

सर्वप्रथम वैदिक साहित्य [प्रमुक्तः ऋग्वेद] का अध्ययन हमारे मानस को तन्त्रित भावों से आह्लादित करता है, उस आह्लादन-प्रक्रिया द्वारा एक ऐसे आजीविक वाक्-सृष्टि में हम विचरने लगते हैं जहाँ दिव्य रसास्वादन में निगमन हो उठते हैं। उक्ति वैचित्र्य, माधुर्य तथा औजस्यी कथनों में अनन्यस्त - अनुसृष्टि ग्रहण कर काव्य की कल्पना से अभिभूत अवश्य होते हैं किन्तु उसमें हमारी मानवीय प्रवृत्ति को तादात्म्यीकरण के लिए अवसर नहीं। आध्यात्मिक सुखानुसृष्टि वाला वैदिक-काव्य धीरे-धीरे कालक्रम से मानवजगत् के अनुभवों को भी स्वानुविष्ट करने की ओर अभिभूत हुआ। इस अभिमुखी-प्रवृत्ति से एक ऐसे काव्य का अवतरण हुआ जो आदिकाव्य कहलाया। यही काव्य वाल्मीकि -रामायण अथवा रामायण कहा जाता है। यह वस्तुतः तपोधन वाल्मीकि की जीकाकुल वाणी से मुखरित भारतीय-संस्कृति का शाश्वत व्याख्यान है। हमारी संस्कृति सुखोपी है, दुःख-बीध कदापि स्वीकार नहीं। आदि काव्य का जन्म शोक-कलम रतमय वाणी से हुआ एवं हमारी उसी संस्कृति की सुधामय-रसधार प्रवाहित हुई -

मा निषाद । प्रतिष्ठां त्वमगमः शशकीः स्मः ।

यत्क्रौञ्चमिधुनादेकमक्षीः काममोहितम् ॥

श्लोक का आपात अर्थ - हे निषाद । तुम पुत्रशायक-पर्यन्त शान्ति अथवा प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर सकोगे, क्योंकि तुमने क्रौञ्च-युगल में से एक का वध कर दिया है। इस छन्द का लक्ष्यार्थ - हे लक्ष्मीपते राम । आपने रावण तथा मन्दोदरी रूप क्रौञ्चयुगल में से एक लोककण्ठक रावण का वध कर दिया, अतः आप शशक, काल-पर्यन्त प्रतिष्ठापन्न बनें। रामायण काव्य में प्रथमतः निषाद रामकथा ज्ञातृद्वयों से मानवीय उदात्तता का प्रतीक बनकर जन-जन को आलोक दे रही है। स्वर्ण ब्रह्मा ने आजीव-रूप में वाल्मीकि को ब्रह्म कहा था - १०
पक्षी, नदी सब पृथिवी पर स्थित रहेंगे तब तक यह रामायणकथा रहेगी तब तक लोक में इसका प्रचार होता रहेगा ।^१

आदिकवि वाल्मीकि का यह आदिकाव्य रामायण काव्य-न्या एतं

१० वाक् स्थास्यन्ति गिरयस्तरिदशय महीतले ।

तावत् रामायणकथा लोकेऽप्युपरिच्यति ॥

वाल्मीकि रामायण १/२५०

काव्य-कल्पना की उत्थातिशयता के कारण भारतीय साहित्य ज़ूटा के लिए उपजीव्य है। भारतीय साहित्य के लिए गौरवान्वित करने एवं संस्कृति का ऐसा कोई उदात्त-तत्त्व, ऐसी कोई दिव्यकल्पना, ऐसा कोई आदर्श, ऐसी कोई भावना नहीं अवश्य रह सकी जो वाल्मीकि रामायण में समावेश न हो पायी हो। इस काव्य में मानवसृष्टि, देवसृष्टि, पुराकथा एवं लोक परम्पराओं का सम्यक् विश्लेषण प्राप्त होता है। "यह महर्षि वाल्मीकि ही थे जिसने रामचरित को काव्य निबद्ध किया। वह रामचरित जिसमें भारतीय संस्कृति का समग्र उदात्त-तत्त्व एकाकार होकर दीप्त होता है, जिसके पठन से सभी वर्ग, जाति तथा सम्प्रदाय वालों को दिव्यानन्द की अनुभूति होती है, जो चरित सभी धर्म-सम्प्रदायों के साथ साथ मानवता और शिल्प-कला तक के लिए प्रेरणा-स्रोत है जिससे भारतीयों के मन भी प्राणवन्त हुए हैं। वस्तुतः राम के लोकोपकारक चरित ने भारत की सांस्कृतिक-विन्नविधा को एक स्वरूप प्रदान किया है जिससे भारतीय समाज को नवीन दृष्टि प्राप्त हुई। रामचरित को मधुर छन्दों में आबद्ध करके हमारे सांस्कृतिक मूल्यों का प्रतीक-रूप से विश्लेषण प्रस्तुत किया है। अपने इस प्रयास द्वारा यह भारतीय कवियों, कलाविदों, शिल्पकारों, वास्तुविदों तक के लिए प्रेरणा-स्रोत-रूप में प्रसिद्ध है।"

1. It were Maharshi Valmiki, who in his great epic poem Ramayana Characterised the hero Rama, whose effluent character with assimilability of all the sublime elements of Indian Culture enamoured the men of every castes and creeds as well as the deeds of artists, along with the men of religion, community, humanity and architecture, sculpture miniature of the country and abroad. Rama's heroic life story and philanthropical activities with the glory of action as a against the glory of surrender gave shape to our culture and thoughts in a Visualising manner to the society. Valmiki as emblemized our cultural virtues by this melodious songs of heroic Character of Rama aroused an enthusiastic wave which inspiral the poets, artists, sculptors and also the architects in India and abroad.

- Ramakarnamrta, Dr. Shiva Shankar Tripathi -
Bharatiya Manisa sutram, Allahabad -6, Page No. 24
Ed. 1st 1988.

भारतीय वाङ्मय के समस्त रामसाहित्य का उपजीव्य यही रामायण काव्य है। रामायण के पश्चात् उससे प्रेरणा ग्रहण कर सर्वप्रथम संस्कृत भाषा तमिल का काव्य "कम्बरामायण" प्रणीत हुआ। अन्य भाषाओं में भी रामायण रचे गये। संस्कृत में भी अद्भुत रामायण, आनन्द रामायण, अध्यात्म-रामायण आदि अनूकरणात्मक रामायण रचे गये। संस्कृत साहित्य में तो रामायण के उपजीव्य-रामचरितम्, अभिनन्द, रामाभ्युदय, रामाभिनन्द, रघुवीरचरितम् एवं राघवीयम् आदि महाकाव्यों की एक दीर्घ सरणि है। "रामगीतगोविन्दम्" [जयदेव], संगीतरघुनन्दनम् [महाराज विश्वनाथ सिंह जू देव] नामक गीत काव्यों के अतिरिक्त "रघुवंश" महाकाव्य प्रकाशित रामकथात्मक रचनारें हैं। महान् मुगल शासक अकबर ने प्रभावित होकर रामायण को मुल्ता बदार्पुनी नगर फारसी भाषा में ह्यान्तरित कराया था। उसने उसे प्रचुर धन व्यय करके चित्रित भी करवाया था। रामायण ही सभी काव्यों और इतिहास-पुराणों का मूल आधार है। रामायण में ही प्रतिपादित आदर्शों की आराधना करके वैदव्यास ने महाभारत जैसा विशाल आख्यानमय इतिहास काव्य का प्रणयन किया।¹ कुमारदासकृत "जानकीहरणम्", मार्कण्डेय मिश्र रचित "दशग्रीवद्वय महाकाव्यम्" युवराज गोदवर्मा प्रणीत "रामचरितम्" रामायण के ही कथातुत्राश्रित रचनारें हैं। महाकाव्यों के अतिरिक्त लघुकाव्यों, स्फुटकाव्यों और चम्पूकाव्यों की भी परम्परा का जीवन-रस रामायणरूप - अगाधमधु-तिन्धु से ही उच्छरित है।

संस्कृत नाट्य साहित्य का भी उपजीव्य रामायण बना।²
 "प्रसन्नराधवकार श्री जयदेव का कथन कितना सटीक एवं प्रभावक है - एकमात्र रघुकुलतिलक राम की ही अपनी सुक्तियों का विषय बनाने में कवियों का दोष नहीं,

1. रामायणमहाकाव्यमादौ बाल्मीकिना कृतम् ।

तन्मूलं सर्वकाव्यानामितिहासपुराणयोः ॥

संस्तितानान्य सर्वास्तं मूलं रामायणं स्मृतम्

तदेवादर्शमाराध्य वैदव्यासो हरिः कृतम् ।

युक्ते महाभारताख्यमितिहासं पुरातनम् ॥ - बृहद्भूषपुराण, पूर्वाह्न

25/28 -29 रामायणमीमांसा : स्वामीकरपात्री जी,

पृष्ठ 313 पर उद्धृत - प्रका० काशी विश्वनाथ प्रकाशन,

वाराणसी ।

यह तो राघवेन्द्र के गुणगणों का ही बड़ा अवगुण है, जिस पर कवि मुग्ध हुए ।¹ इसके अतिरिक्त रामायण कथा पर आधारित नाट्यकृतियों में आठवीं शती का "उदात्तराघव", नवीं शती का "अनघराघव", दसवीं शती का "हनुमन्नाटक", शक्तिभद्र रचित "आश्वमेधवृद्धामणि" महाकवि भवभूतिकृत "उत्तररामचरित" आदि उल्लेखनीय हैं । रामायण-कथा का अमृतरस हमारे साहित्य तथा संस्कृति की धारा का एकमात्र उद्गम-स्थल है । प्रायः कवियों ने अपनी-अपनी मति के अनुसार उससे रस ग्रहण द्वारा कविधर्म निवाहा है । महाकवि भास की नाट्यकृतियों में भारतीय पुराणेतिहास के संस्कृतिमूलक विविध पक्ष अत्यन्त सफलतापूर्वक प्रतिबिम्बित किये गये हैं । "भासनाटकसमूह" के नाटकों की कथावस्तु विभिन्न ग्रन्थों से अभिगृहीत है । "प्रतिमा" एवं "अभिषेक" नाटक की कथावस्तु का मूल रामायणकथा से ग्रहण किया गया है ।

प्रतिमा

रचना-प्रक्रिया, कथा-संयोजन तथा शैली की दृष्टि से यह भास की नाट्यकृतियों में शीर्षस्थ है । कवि नाटक का प्रारम्भ जिस सन्दर्भ से करता है, उसी सन्दर्भ से उसकी समाप्ति भी । राम के युवराज-पद पर अभिषेक की भूमि योजना से समस्त नगर आनन्दोल्लसित किन्तु उन्हें वनवासादेश । चौदह वर्षों की वनवासावधि समाप्त कर राम का पुनरागमन और पुनः उनका राज्याभिषेक । बस यह है इस नाटक का संक्षिप्त कथानक । इस नाटक में सात अंक हैं ।

प्रथम अंक

यह अंक प्रतिहारी और कंचुकी के वार्तालाप से प्रारम्भ होता है । प्रतिहारी दशरथ द्वारा राम को युवराज पर अभिषिक्त करने के विनिश्चय की सूचना के साथ कंचुकी को समस्त साज सम्भार पूर्ण करने के लिए कहती है । कंचुकी

-
1. स्वसुक्तीनां पात्रं रघुकुलतिलकमेकं कलयतां
कवीनां को दोषः स तु गुणगणानामवगुणः ।
यदेतैर्निःशेषपरगुणलुब्धैर्वि जगद्य -
साधैकश्यके सततसुखसंवाप्तवसति ॥

प्रस्तावना रामायणमीमांसा, पृ० 312 पर उद्धृत ।

पूर्व ही नृपति के निर्णय का ज्ञान एवं तत्सम्बन्धी सारी तैयारी संपादित हो जाने से उसे अवगत कराता है । इसी अवसर पर अवदातक नामधेया परिवारिका का हाथ में वल्कल लिये प्रवेश होता है। उस पर सीता^{की} दृष्टि पड़ती है, वह उसे अपने पास बुला लेती है और वल्कल उसके हाथों से लेकर कौतुकवश धारण कर लेती है । घेटी युवराज-पद पर राम के अभिषिक्त की महाराज दशरथ द्वारा किये गये निर्णय से सीता को अवगत कराती है । नगर में आनन्दबोधक वाद्यवृन्द के स्वर यम जाते हैं । अचानक इस परिवर्तन से सबमें विशेष कौतुहल जग उठता है । सहसा ही राम भी वहाँ पहुँच जाते हैं और स्वयं भी वल्कल धारण करना चाहते हैं । कंचुकी सूचित करता है कि कैकेयी ने आपका अभिषेक करने से नृपति को रोक दिया है । इससे महाराज मूर्च्छित हो गये हैं और उन्होंने सकेत से आपको सूचित करने का निर्देश दिया है । कैकेयी ने युवराज पद भरत के लिए याचित कर लिया है । उसी समय सहसा धनुष-बाण लिए लक्ष्मण का आगमन होता है । वह बहुत उत्तेजना में है और राम को भी उत्तेजित करते हैं परन्तु शान्त-स्थिर राम लक्ष्मण को भी शान्त कर देते हैं । राम अकेले वन के लिए प्रस्थान करना चाहते हैं किन्तु लक्ष्मण तथा सीता भी उनका अनुसरण करते हैं ।

द्वितीयार्क

राजा दशरथ ने राम को वन जाने से विरत करने का बहुशः प्रयत्न किया परन्तु असफल रहे । इसके बाद निराश्रमन से वह राम के प्रेम में विह्वल होकर विलाप करने लगे । वह समुद्रगृहक में शयन करने के लिए चले गये । कौशल्या और सुमित्रा दोनों रानियों उन्हें सान्त्वना देती हैं किन्तु उनकी स्थिति में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं दिखायी पड़ता । इसी बीच सुमन्त्र राम, सीता और लक्ष्मण को वन में छोड़कर स्वयं वापस आ जाते हैं । राम को वापस न आया जानकर राजा दशरथ मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़ते हैं । घेतना वापस आने पर राम के विषय में पूछते हैं । उनको कथमपि शान्ति नहीं मिल पाती । अन्ततोगत्वा वह अपने प्राणों का त्याग कर देते हैं ।

तृतीयार्क

पता चलता है कि मृत इक्ष्वाकुवंशीय नरेशों की प्रतिमा - स्थापना की अथौध्या में परम्परा है । इसी परम्परा में राजा दशरथ की भी प्रतिमा का

स्थापन किया गया है । महाराज दशरथ की प्रतिमा के दर्शनार्थ कीर्त्तिया आदि महारानियाँ का आगमन होने वाला है । रथ पर आरुढ़ भरत और तारकी आते हैं । भरत की महाराज दशरथ की स्थापि का समाचार मिल चुका है । अयोध्या और दशरथ-सहित परिवार का हुजूम वृत्तान्त जानने के लिए आतुरता से तारकी को रथ रोकने का आदेश देते हैं । अचानक एक तेजिक पहुँचकर गुस्खनों के आदेशानुसार कहता है "कृत्तिका नक्षत्र के अन्तिम चरण स्थिति हो जाने पर नगर में प्रवेश करना उचित नहीं है ।" भरत रुक जाते हैं । वह अचानक प्रतिमागृह की ओर जाते हैं । प्रतिमागृह का संरक्षक देवकुलिक वहाँ प्रतिष्ठापित प्रतिमाओं का परिचय देता है और यह भी बताता है कि यहाँ मृत नृपतियों की ही प्रतिमाएँ स्थापित की जाती हैं किसी भी जीवित नरेश की प्रतिमा नहीं । भरत वहाँ स्थापित दशरथ की प्रतिमा देखकर मुग्धित हो धरती पर गिर पड़ते हैं । देवकुलिक राम के वनवास का वृत्तान्त भी बता देता है । इसी बीच वहाँ कीर्त्तिया आदि महारानियाँ भी प्रतिमा का दर्शन करने पहुँच जाती हैं । कीर्त्तिया से भरत स्वयं को निरपराध बताते हैं तथा अपनी माता केकयी को भी कोसते हैं । वामदेव, पक्षिष्ठ आदि महर्षिजन्म भरत को राज्याभिषिक्त करना चाहते हैं परन्तु वह स्वीकार नहीं करते ।

यतुर्वाक

भरत सुमन्त्र के साथ रथ से तपोवन में पहुँचते हैं जहाँ राम, लक्ष्मण एवं सीता का निवास है । सुमन्त्र से भरत वार्तालाप करते चल रहे हैं, उनके वार्तालाप का स्वर राम के कानों तक पहुँचता है, उन्हें परिचित बन्धु की ध्वनि प्रतीत होती है । तब तक भरत भी वहाँ पहुँच जाते हैं । रथ से परस्पर मिलते हैं । तपोवन का सम्पूर्ण वातावरण कम्पन हो उठता है । भरत राम की अयोध्या वापस चलकर राज्य का भार सम्हालने की प्रार्थना करते हैं । राम पिता दशरथ के सत्य की रक्षा करने के लिए भरत को सहमत कर लेते हैं । भरत राम की चरण पादुकारों, उनके प्रतिनिधित्व में तिहासनस्थ करने के लिए माँगते हैं । राम की न्याय स्वल्प स्वीकारते हैं और चौदह वर्षों के पश्चात् राम से स्वयं भेंट का भी वचन लेकर अवध नगरी वापस हो जाते हैं । राज्य के रक्षण में कथमपि अनवधानता न करने और सुमन्त्र को भरत की रक्षा का पूर्ण ध्यान रखने के लिए राम उपदेश

भी देते हैं ।

पंचमार्क

आश्रम में सीता पीथी को तीर्थ रही है । राम पिता दशरथ के ब्राह्म-दिवस के विषय में चर्चा करते हैं - "पिताजी की ब्राह्म का दिवस कल है । निम्नानुसार सामर्थ्य के अनुसार पितरों का ब्राह्म सम्पन्न करना चाहिये । मेरे पास आवश्यक सारी वस्तुएँ नहीं हैं जिनका उपयोग ब्राह्म में किया जाता है ।" उन्हें चिन्तित जान सीता समाधान प्रस्तुत करती हुई कहती है - अयोध्या में भरत निम्नानुसार ब्राह्म-क्रिया को तैयार करके लाएँगी, आप वन में उपलब्ध फल-पुष्पों से ब्राह्म कर दें ।" राम-सीता का वार्तालाप चल ही रहा था कि सन्यासी का रूप धरे रावण उपस्थित होकर स्वयं को कारण्य गोत्रोत्पन्न बताता है । साथ ही विविध शास्त्रों में पूर्ण निष्णात और प्रायेतः ब्राह्मकल्प का विविध धीक्षित करता है । उसके प्रति राम के हृदय में विशेष श्रद्धा एवं अभिरुचि उत्पन्न हो उठती है । वह उससे पिण्डदान के विषय में जानकारी चाहते हैं, पितरों को कितने पदार्थों से सन्तुष्ट किया जाना चाहिये आदि । सन्यासी रावण बताता है - पितरों की सन्तुष्टि के लिए सर्वाधिक उपयुक्त वस्तु कर्चनपार्श्व नामक मृग है । यह मृग हिमालय की सातवीं चोटी पर मिलता है । उसको प्राप्त करना अत्यन्त दुष्कर है । इसी समय तथाकथित कर्चनमृग दिखायी पड़ता है । सन्यासी की सेवा सत्कार का दायित्व सीता को सौंप कर राम उसे पकड़ने जाते हैं । सीता के अकेला होने के अन्तर से रावण लाल उठता है । वह तुरन्त अपने रूप में प्रकट होता है और अपना परिचय देकर सीता को लेकर भागता है । सीता क्लिप्त होती है परन्तु रावण बलात् पकड़कर चला जाता है । सीता को लेकर जाते हुए रावण पर मुराराज जटायु आक्रमण करता है ।

षष्ठार्क

अंक विष्कम्भक से आरम्भ होता है । दो तापस रावण द्वारा ले जायी जाती सीता को देखकर भयाक्रान्त हो उठते हैं । दोनों परस्पर जटायु के पराक्रम की प्रशंसा करते हैं । जटायु रावण द्वारा अहत धरती पर गिर जाता है । विष्कम्भक के परयात् दृश्य अयोध्या में केन्द्रीकृत हो जाता है । राम का समाचार जानने गये सुमन्त्र अयोध्या लौटकर भरत को सीताहरण का वृत्तान्त

बताते हैं। वह कहते हैं, "मैं पहुँचा तो आश्रम निर्जन था। पता चला कि राम वानरों की नगरी किष्किन्ध्या गये हैं जहाँ वानरराज सुग्रीव रहता है। तमान दुःखों वालों में मैत्री स्थापित हो गयी है। कारण सुग्रीव के बड़े भाई ने उसकी पत्नी को अपहृत कर लिया है और माया का सहारा ले राक्षसराज ने सीता का अपहरण कर लिया है। भरत इस समाचार से बहुत सन्तप्त हो उठते हैं। कैकेयी को बहुशः उलाहना देते हैं। कैकेयी के कहने पर सुमन्त्र दशरथ को मिले शशि श्राप का कथन करते हैं। कैकेयी भरत से कहती है "शशि श्राप की सत्यता के लिए राम को वनवास दिया है।" सुमन्त्र बताते हैं - महाराज दशरथ ने वन्यगज के भ्रम में जल में कलश भरते शशिकुमार का वध कर दिया था। शशिकुमार के पिता ने यह जानकर दशरथ को भी पुत्रशोक में मरने के लिए श्राप दिया था।" कैकेयी ने भरत से कहा कि मैं तो मात्र चौदह दिनों का वनवास मँग रही थी परन्तु मन अत्यधिक व्याकुल रहने से चौदह वर्ष का वनवास मुँह से निकल गया।" सत्य जानकर भरत कैकेयी से क्षमा-याचना करते हैं और राम के सहाय्यार्थ सेना लेकर वन प्रस्थान की योजना बनाते हैं।

सप्तमः

तापस बताता है कि सीता के अपहर्ता रावण का राम ने वध कर दिया। लंका के राज्य पर विभीषण को अभिषिक्त किया है। वह वानर समूह-सहित पधार रहे हैं। तब तक राम सीता समेत पहुँचकर उन्हें आनन्दित करते दिखायी पड़ते हैं। राम सीता को वनवास के विभिन्न स्थान दिखाकर स्मृति नवीन करते हैं। उसी समय परह ध्वनि तथा उड़ती धूल दिखायी पड़ती है। यह देख लक्ष्मण आकर सैन्य और परिजन सहित भरत के आगमन की सूचना देते हैं। राम-सीता बड़ी ही उत्तावली से उनकी प्रतीक्षा करते हैं। माताओं के साथ भरत वहाँ उपस्थित होते हैं। परस्पर स्नेह मिलन होता है। सभी शशि, सारी प्रजा एवं अमात्य राम का अभिषेक करते हैं। कैकेयी भी समस्त कार्यकलाप का समर्थन करती है। उसके पश्चात् रावण के पुष्पक विमान पर सभी आरुढ़ होकर अयोध्या के लिए प्रस्थान करते हैं। भरतवाक्य से नाटकान्त -

यथा रामश्च जानक्या बन्धुभिश्च समागतः ।

तथा लक्ष्म्या समायुक्तो राजा भूमिं प्रशास्तु नः ॥

अभिषेक

रामायण कथानक पर आधारित भास की यह दूसरी नाट्य रचना है। इसमें किष्किन्धा-प्रदेशान्तर्गत राम द्वारा बालि-वध की घटना से प्रारम्भ और अयोध्यान्तर्गत रामाभिषेक - महोत्सव तक की घटना से रामकथा का पुनर्लेखन किया गया है।

प्रथमांक

सुग्रीव राम की सहायता पाकर बालि को युद्ध के लिए आवाहित करता है। वानरराज बालि तुरन्त युद्धार्थ प्रस्थान करना ही चाहता है कि पत्नी तारा उसको विविध तर्क-वितर्क उपस्थित कर युद्ध से विरत करने का प्रयास करती है परन्तु बालि पर किंचिदपि प्रभाव नहीं पड़ता। वह अपने निश्चयानुसार दृढ़ रहता है, तारा को अपनी विजय का आश्वासन देकर चला जाता है। सुग्रीव-बालि का परस्पर द्वन्द्व युद्ध राम लक्ष्मण - हनुमान के साथ देखते हैं। युद्ध में बालि सफल पड़ता है। सुग्रीव की दयनीय दशा देखकर हनुमान राम को सुग्रीव-भैत्री के अवतार पर दिये गये उनके वचन का स्मरण कराते हैं। राम बालि पर शर - सन्धान करते हैं और बालि आहत होकर धराशायी हो जाता है। घेतना आने पर बालि श्रीरामनामांकित शर पहचान कर कहता है - "हे राम आप राजधर्म पर आल्हू हैं, धर्मस्वरूप के आप परमज्ञाता हैं। आप सांसारिक छल प्रपञ्चों का निवारण करने वाले हैं साथ ही आप वीर भी हैं। इस प्रकार अधर्मनीति का अनुसरण कर मेरा वध करना क्या उचित था?" "तुमने छोटे भाई की पत्नी के साथ अभिगमन किया है, इस अपराध से मारा है" राम के इस उत्तर से बालि निरुत्तर हो जाता है। वह राम से क्षमा माँगकर अपने पुत्र अंगद और कुलकुमागत हेममाला सुग्रीव को सौंपकर सदा के लिए अर्धे मीचे जाता है। राम लक्ष्मण को सुग्रीव के राज्याभिषेक का भार सौंपते हैं। वह तदर्थ सक्रिय होते हैं।

द्वितीयांक

ककुभ तथा बिलमुख दो बानरों की पारस्परिक बातचीत से मालूम होता है कि दक्षिण की छोड़कर अन्य सभी दिशाओं से सीता अन्वेषणार्थ प्रेषित वानरी सेना वापस आ गयी है। जटायु से समाचार जानकर हनुमान समुद्र लांघकर

लंका नगरी पहुँच गये हैं। राक्षसनिर्घो से धिरी ^{सीता} विनयती हुई दिखायी पड़ती है। उसी समय हनुमान का प्रवेश होता है। वह अजीकपुत्र के कोटर में छिपकर तारी नतिविधि देखते हैं। रावण सीता को अनेकजः निवेदन कर प्रणयिनी बनाने का प्रयास करता है। सीता उत्सीकारती है। रावण निराश होकर चला जाता है। तुल्यकार देखकर हनुमान स्वयं को प्रकट करते हैं। राम का वृत्तान्त तथा उनकी वियोगावस्था का वर्णन करते हैं। सीता को विश्वास दिलाकर, राम के साथ जाने का वचन दे उनकी अनुमति से हनुमान प्रस्थित होते हैं। अपने आश्रम की सुचना करने के उद्देश्य से निकट उपवन को द्यस्त करने का संकल्प करते हैं।

सुतीयांक

उपवन के विद्वस्त होने का वृत्तान्त जानकर रावण हनुमान की बाँध ताने के लिए तेजिक भेजा है। कौकर्म नामक परिचर पाँच सेनापतियों सहित अजुमार के भी मारे जाने की सुचना रावण को देता है। उसके बाद इन्द्रजित पुत्र में उतरता है। शीघ्र ही परिचर द्वारा सुचना मिलती है कि बन्दर बाँध लिया गया है। रावण उसी समय विभीषण को बुलवाता है। हनुमान को लिए हुए राक्षस उपस्थित होते हैं। हनुमान स्वयं को रामदूत बताते हुए कहते हैं - तुमको राम के बाण यमपुर पहुँचा देंगे, तुम रक्षा के लिए बाँधे ऊँट की शरण में ही क्यों न जाओ या गिरि-कन्दराओं में छिपी, रक्षा अतन्मय है।" विभीषण भी हनुमान के कथन का समर्थन करता है। साथ ही सीता वापस कर देने के लिए रावण से निवेदन करता है। रावण रौब में न केवल विभीषण अपितु राम के प्रति भी कटु ध्वन व्यक्त करता है। हनुमान भी प्रतिध्वन स्वरूप रावण के लिए कटु शब्द कहते हैं। हनुमान को रावण निकलवा देता है। विभीषण पुनः सीता को वापस कर देने तथा राक्षसकुल की रक्षा करने की रावण से प्रार्थना करता है। रावण उसे भी फटकार कर मना देता है। विभीषण रामचन्द्र की शरणागत होने के लिए प्रस्थान कर देता है।

चतुर्थांक

सीता का सन्देश प्राप्त हो जाने पर वानर सेना प्रस्थान कर चुकी है। वह समुद्र तट पर रुकी, जाने के लिए मार्गान्वेषण कर रही है। उसी समय

आकाशमय ते विभीषण उतरता दिखायी पड़ता है । तारी वामसेना विरिष्ठाओं से देखने लगती है । नीचे उतरते ही हनुमान विभीषण को पहचान लेते हैं । उसे साथ लेकर राम के पास जाते हैं । विभीषण को राम सादर ग्रहण देते हैं । समुद्र पार करने की मन्त्रण में विभीषण समुद्र पर दिव्यास्त्रों के प्रयोग की सलाह देता है । राम द्वारा बरतंधान से मयभीतवत्स प्रकट होते हैं और तानर के बीच से सेना के लिए मार्ग दे देता है । तारी सेना पार पहुँचकर तुलसी पर्वत पर शिविर बनाती है । सेना में दो बन्दर अधिक होने की सुचना मिलती है । उपरिष्ठा दोनों वानर अपने को कुमुद नामक वानर का तेजक कहते हैं । विभीषण पहचान लेता है और उन्हें रावणदुत कुक-सारण राक्षस बताता है । राम उन क्षुण्णों द्वारा सौमन्य निज आगमन का सन्देश देकर उन्हें ससम्मान विदा करते हैं ।

पंचमंक

कंबुकी द्वारा युद्ध प्रारम्भ होने तथा कुम्भकर्ण आदि मुख्य वीरों के मारे जाने का समाचार रावण को मिलता है । साथ ही यह भी कि इन्द्रजित युद्ध के लिए प्रस्थान कर चुका था । रावण विदग्धुज्ज्वहन नामक एक राक्षस को राम-लक्ष्मण की प्रतिकृति तैयार करने का निर्देश देता है । वह शिव की प्रतिकृति उपस्थित करता है । उसके परचात् रावण सीता के पास जाकर कहता है - "राम और लक्ष्मण दोनों को आज युद्ध में मार डालूँगा, अब तुम मेरा वरण कर लो ।" सीता उसे हटकाती है । उसी समय राक्षस निर्देशानुसार राम - लक्ष्मण का कटा हुआ शीश उपस्थित कर देता है । उसे देखकर सीता विनाश करने लगती है । इसी बीच एक अन्य राक्षस आकर सुचना देता है कि इन्द्रजित मारा गया है । रावण मुर्छित होकर गिर जाता है । स्थित होने पर कल्म-कुन्दन करने लगता है । क्रोधावेश में वह तलवार लेकर सीता को ही मारने के लिए दौड़ पड़ता है । एक राक्षस उसको "स्त्रीवध" अनुचित कहकर उसे विरत करता है । हताश रावण स्वयं समरभूमि की ओर चल देता है ।

षष्ठंक

तीन विचारधर राम-रावण के भीषण युद्ध का वर्णन करते उपस्थित होते हैं । इन्द्र का सारथि मातलि राम के लिए दिव्य रथ ले जाता है । राम उस पर आरुढ़ हो रावण का वध कर डालते हैं । विभीषण लंका राज्य का

अधिकारी हो जाता है। सीता राम के पास उपस्थित होती है। राम उन्हें राक्षस स्पर्श के कारण त्याज्य समझते हैं। पातिष्ठा के परिहर्णार्थ सीता अग्नि में प्रवेश करती है। उसके पश्चात् वह अत्यन्त दीप्तिमती हो उठती है। स्वयं अग्निदेव उन्हें लेकर उपस्थित होते हैं और सीता की पवित्रता का साक्ष्य दे उन्हें निष्पाप घोषित करते हैं। नेपथ्य से राम की साक्षात् नारायण-स्वल्प स्तुति दिव्य गन्धर्वों द्वारा उच्चरित स्वर सुन पड़ता है। समस्त देवतमुदाय-सहित देवर्षि एवं ऋषिगण राम का अभिषेक करते हैं। भरत ऋचन के साथ प्रजापति एवं स्वयं दशरथ भी उपस्थित होते हैं। भरतमावय के साथ समाप्ति

भवन्तवरजसो गावः परचक्रं प्रजाम्भु ।

इमामपि महीं कृत्स्ना राजसिंहः प्रजास्तु नः ॥

। हमारी इन्द्रियों रजर्विकार से रहित हों, ऋ-मण्डल का अमन हो और समस्त पृथिवीमण्डल पर हमारे राजसिंह शासन करें । ।

संक्षिप्त कथानक से तैरित मित्रता है कि रामायण कथाप्रति दोनों नाटकों में महाकवि भास ने प्रायः कथातृप्त में कतिपय परिवर्तन भी किये हैं। वह परिवर्तन नाट्य संरचना की किस सीमा तक संगत अथवा असंगत है, इस विषय में भी हम विस्तृत आलोचना पुष्क प्रस्तुत करना चाहेंगे।

दोनों नाटकों में रामायण-कथा का निर्वोह एवं कवि कल्पना का समन्वय

प्रतिमा

नाटक की कथावस्तु का उत्तम रामायणीय इतिवृत्त है। कवि ने इसमें एक प्रकार रामायण-वर्णित रामकथा को समग्रतः समाधीकृत किया है। मौलिकता, भाव सम्यक्कीयता जन्त नाटकीयता की अभिवृद्धि - प्रयोजनवशात् कतिपय नाटकीय संरचना तथा गतिशीलता में व्यवधान न होकर कीर्तुहलप्रद ही सिद्ध हुई है। कवि की मौलिक तुल्यता -

चल्कन की घटना

प्रथम अंक में जब राम के राज्याभिषेकोत्सव की तैयारियाँ चल रही हैं, उसी समय अक्कातिका नामक घेटी चल्कन लेकर अन्तःपुर में सीता के पास जाती है सीता परिहास में उससे चल्कन लेकर धारण कर लेती हैं। राम वहाँ आते हैं,

वह भी उसे धारण करने की अभिलाषा प्रकट करते हैं। यह घटना रामायणीय कथा में कहीं भी नहीं है। मात ने अपनी इस कल्पना को प्रतिस्थापित कर आश्चर्यजनक मीलिकता उपस्थित की है। इस कल्पना से कथानक में न केवल नाटकीय कीचड़ अर्थात् क्षिप्रता का भी सहज संयोग हो जाता है। इस घटना के ही क्रम में, तत्क्षण सुचना मिलती है, पाच-स्वर बन्द हो जाते हैं एवं कंबुकी आकर कहता है - स्त्रीबुद्धि के क्लृप्त को धोना दुमर है। उती के कथन से आपका अभिप्रेत एक गया है [कुमार] अस्मत्प्रवृत्तात् स्त्रीबुद्धिषु स्वभार्यकमुपनिक्षिप्तम्। तस्या एव कथनात् भव्यमिषिको निवृत्तः।। वस्तुतः महाकवि मात ने वल्कल - घटना को परिकल्पित कर भविष्यका का संकेत और वनवात - घटना में सहजता ला दी है।

जुहुन की उपस्थिति

रामायणीय इतिवृत्त द्वारा राम राज्याभिषेक महोत्सव के अवसर पर भरत - जुहुन दोनों भाई अनुपस्थित कहे जाते हैं। मात की कथा संयोजन से प्रकट है कि अनेक भरत अनुपस्थित हैं। यह परिवर्तन भी कथाक्रम तथा घटनाक्रम के तारतम्य को बल प्रदान कर गतिशील बनाता है। कैकेयी का अभिलाषित भरत को राज्याभिषेक देवना था, उनकी उपस्थिति में वह कदाचित् यह वरदान न माँग पाती किन्तु जुहुन का अपीक्षा में उपस्थित रहना उसमें व्यवधान नहीं था।

पुर्वजों का दृश्य

द्वितीयार्क में महाराजा दशरथ की मृत्यु से पूर्व दिलीप आदि ऋषाकुलंजीय महापुरुषों का दृश्य, उसमें दशरथ द्वारा उन्हें संबोधित कर "पितृगण, यह, यह मैं आया" प्राणों का क्षिर्जन किया गया है। यह घटना भी रामायणीय कथाक्रम से मिल्न है। हमारी धारणा है कि यह कल्पना मात ने ऋषाकुलों के तत्प्रतिष्ठ होने, कथन प्रतिपादन की साहय उपस्थित हेतु किया है। दशरथ उती परम्परा को प्रतिष्ठित करने में प्राण त्याग करते हैं। इती के साथ अग्रिमार्क में प्रतिमा मन्दिर की संगति भी हो जाती है।

ऋषाकु - नृपों का प्रतिमागृह

नाटक का तृतीयार्क रामायणीय कथा से पूर्णतः मिल्न है। यह

परिकल्पना नाटक को सर्वथा मौलिक बना देता है। सम्भवतः यह कल्पना कवि ने कुल के पूर्व पुत्रों की स्मृति द्वारा उन्हें द्वारा आधारित मार्ग के अनुसरण हेतु प्रेरण ग्राह्य करने के लिए किया हो। इस संयोजन से नाटक की कथावस्तु में क्षिप्रता का संयोग भी हुआ है। भरत को देखकुलिक द्वारा परम्परा-कथन- "इत प्रतिमा गृह में मृत नृपों की ही प्रतिमाएँ स्थापित की जाती हैं, जीवित की नहीं। न उतु अतिक्रान्तानामिव।।" दशरथ की प्रतिमा का दर्शन करते ही भरत दशरथ के निधन-वृत्तान्त से अवगत हो जाते हैं। बताने की आवश्यकता नहीं पड़ी। दुःखद समाचार का संक्षेप प्रतीक द्वारा, कितनी मौलिक कल्पना है। प्रेक्षकों के लिए कोतुहली-त्पादक भी।

राम-रावण भेंट

पंचमार्ग में सीता-हरण का प्रसंग रामायणीय कथा से सर्वथा भिन्न है। यहाँ रावण, राम की उपस्थिति में आता है, मायामुग नहीं कंचिन्पाशवर्ध-मुग, राम-सीता के अनुरोध नहीं रावण के आदेश से, पश्चिका में सीता को स्वाकिनी छोड़कर राम के जाने की कल्पना है। पिता दशरथ के ब्राह्म की तिथि पर ब्राह्म-विधानीयक्रम-संपादनाय कंचिन्पाशवर्धमुग की अनिवार्यता परिस्राज्जवेधी रावण द्वारा प्रतिपादन तदर्थ राम का जमन सर्वथा समीचीन प्रतीत होता है। लक्ष्मण पहिले से ही तीर्थयात्रा से प्रत्यावर्तित आश्रम कुलपति के स्वाम्ताय जा चुके हैं। [आर्यपुत्र] ननु तीर्थयात्रात् उपावर्तमानं कुलपतिं प्रत्यदगच्छेति संदिष्टः सीमित्रिः।। ऐसी वृत्त्य स्थिति में रावण अपना अस्मिन्निष्ठ "सीतापहरण" कार्य पूर्ण करता है। कवि कल्पित घटनाएँ इतनी स्वामाविकता से संमिश्र होती हैं कि प्रेक्षकों की कियदपि कटकाती नहीं। कथा में गतिमयता एवं संप्राप्ता का भी संघार हो जाता है। लक्ष्मण का पहिले से अनुपस्थित रहना नाटकीयता का विशेष लक्षण है।

सुमन्त्र का पुनः दण्डकारण्य-गमन

ऐसा कोई भी तन्दर्भ रामायणीय-कथा क्रम में नहीं है। कवि ने षष्ठांक में इसी के साथ भरत द्वारा माता कैकेयी को उपालम्भित करना, राम के तहायता-निमित्त भरत द्वारा दण्डकारण्य प्रस्थान की कथा भी संयोजित कर डाली है। एक प्रकार से षष्ठ अंक की अधिकांश घटनाएँ अधोदया में केन्द्रित हैं। वस्तुतः मात आदर्शवादी नाटककार हैं, उन्होंने अपने पात्रों के चरित्र को

आदर्श-नुष्ठ ही उपस्थित करने का प्रयास किया है। मात की कल्पना में
 केकेयी निर्दोष है, उसकी पवित्रता को उजागर करने का यह उपक्रम किया गया
 है। तीता-हरण से संतप्त भरत केकेयी को जब उपासम्भित करते हैं तो यह कहती
 है - "राज्य-लोभ के कारण नहीं अपितु मन्त्रिणाप की सत्यता के लिए वनवात
 का आग्रह भेजे किया x x x x में बीसह दिन रहना चाहती
 रही किन्तु अवधान्तावज बीसह वर्ष मुँह से निकल गया। एतन्निमित्तपराधे मां
 निहिष्य पुत्रको रामो यन् प्रेषितः, न क्त्तु राज्यलोभेन। अपरिहरणीयो महर्षिणापः
 x x x x यत्तुर्दश दिवसा इति वक्तुकामया पर्याकुलहृदयया यत्तुर्दश
 वर्षाणीत्युवाच। यह सुनकर भरत उपासम्भ के लिए क्षमा याचना करते हैं।

राम का राज्याभिषेक जनस्थान में

जस्त राम की सहायता के लिए प्रीतिपूर्वक से प्रस्थित होकर वन में
 तैत्थ्य पहुँचते हैं। तथ में पूरा नगर एवं रनिवात। पहुँचने पर राम द्वारा
 रावण विजय की सुचना। भरत तत्काल राज्यभार राम को सौंपते हैं। आर्य
 प्रतिगृह्यतां राज्यभारः। केकेयी की आज्ञा तथा ऋष्य के अनुरोध से राम
 अभिषेक स्वीकार करते हैं। कथ्य जाता अभिषेकः। x x x ऋष्यः -
 आर्य स्त्री वसिष्ठवामदेवी सह प्रकृतिमिरभिषेकं पुरस्कृत्य त्वद्दर्शनमिच्छतः।
 राम फिर "यदाज्ञापयत्यम्बा" कहकर अभिषिक्त हो जाते हैं। यह कल्पना भी
 मात की आदर्श-नुष्ठता से उत्प्रेरित है। केकेयी के वचन से राम वनवाती बने थे,
 उस वचन के लिए परचाताप-रूप्य वहीं उतने उन्हें राज्याभिषिक्त कराकर अपने
 कतुब का प्रधातन कर लिया। भारतीय संस्कृति तथा भारतीय नाट्यसाहित्य
 "दुःखान्तक दुःखी" को संगत नहीं स्वीकारती। महाकवि मात की इस मौलिक
 कल्पना द्वारा नाट्यसाहित्य का रक्षण हो गया एवं नाटक सुखान्त होकर
 आदर्शपस्थापक बना।

उपरिलिखित परिष्कारों की कल्पना, नाटकीय दृष्टि से सुतरां
 महत्वपूर्ण है। मात की ये मौलिकताएँ नाटक की कथावस्तु के लिए मन्त्रि-कवि-
 संयोग है।

अभिषेक

इस नाटक की कथावस्तु का उपजीव्य रामायणीय कथा किञ्चित्

काण्ड के प्रारम्भ से युद्धकाण्ड-उत्तरार्द्ध-पर्यन्त की कथा है । पूरी कथा सर्वकथात है । मात ने नाटक को मौलिक बनाने के उद्देश्य से अधिगृहीत कथा को कतिपय परिवर्तन कर विशेष आकर्षण उपस्थित करने का प्रयास किया है । कवि अपने इत उपस्थापन करने का प्रयास किया है । कवि अपने इत उपस्थापन में यद्यपि बहुत सफल न हो सका तथापि नाटककार - धर्म की अवतारणा के उन उर्ध्वों का उत्प्रेष आसङ्ग है -

वल्ग्व की उपस्थिति

रामायण कथा के अनुसार रावण विजय के अभियान-सन्दर्भ समुद्र पार होने के लिए वानर सेना में स्वयं नल-नील द्वारा पत्थरों से सागर पर सेतु निर्मित किया, क्योंकि शक्ति-वाणी का प्रभाव था कि उनके स्वयं से प्रसारकाण्ड कम में डूब नहीं सकते । "उमिषक" में यह प्रसंग सर्वथा नवीन है । समुद्र तट पर उपस्थित सेना को पार होने के लिए विभीषण द्वारा प्राप्त परामर्श, राम अपने शर संधान से सागर को तुड़ा देने का उपक्रम करते हैं । मयाक्रान्त वल्ग्व स्वयं उपस्थित होते हैं । "हे राजकुमार ! आप रोष क्यों कर रहे हैं ? इतने बड़ा नाम ! हे पुत्रोत्तम ! आप शीघ्र मेरे लिए करणीय क्या है, आदेश करें । । राजपुत्र ! कृतः कोपो रोषश्च किमर्थं तव ! कर्तव्यं तावदस्माभिर्ह्यं शीघ्रं नरोत्तमम् ।। [अंक ५/१६] । "लंका जाने का मार्ग" राम के ऐसा कहने पर "यही मार्ग है" [एव मार्गः] कहकर वल्ग्व अन्तर्धान हो जाते हैं । समुद्र के मध्य मार्ग बन गया । सम्यक्ताः मात ने यह कल्पना राम की अतीक्ष्णता-आभासित कराने के उद्देश्य से किया ।

बालि-वध का प्रसंग

रामायण कथा एवं इत नाटक में उपस्थित घटनाओं में अन्तर है । एक यह कि राम ने बालि से उसके वध रूप अपने कार्य का औचित्य प्रतिपादित किया है - "आप वानरराज हैं, धर्मार्थ का ज्ञान रखते हैं, आप अपने को मुग कहें और माई की स्त्री को दुष्टि करें, यह उचित नहीं [मक्ता वानरेन्द्रेण धर्माधर्मो विजानता । आत्मनं मुगमुदिदग्य मातृदाराभिभ्रमनम् 1/20] । मात ने दूसरा अन्तर यह किया कि इसमें तारा का विलपन नहीं दिखाया, उसका विलाप केवल नेपथ्य में ही सुनायी पड़ता है । बालि कहता है - सुग्रीव ! त्रियों को

रोकी [सुग्रीव] संवार्कतां तवार्कतां स्त्रीजनः । अंक -1। । यहाँ भी उन्होंने भारतीय मर्यादा का निर्वाह नहीं किया । कदाचित् इस कारण भी कि मर्यदा विनष्ट हो जाने से बालि तारा के समक्ष लज्जा का अनुभव करता है । उसने तारा से कहा था - "तमुद्रमन्यन के अवसर पर, देव दानवों का उपहास कर, वातुकिनाग-रूप रस्ती कीजने लगा, वातुकि की अग्नि निकल आयी थी, भयंकर रूप हो गया, सभी विस्मित रहे, यह है मेरा पराक्रम [अंक 1/11] । मात की यह कल्पना मर्यादा-रक्षण में सहायक है ।

जटायु-मीलन

रामायणीय-कथानुसार जटायु राम की भेंट सुग्रीव-भेरी से पूर्व प्रदर्शित है । मात ने यह घटना सुग्रीव द्वारा सीतान्वेषणार्थ वानर सेना प्रेषित हो जाने पर हनुमान के साथ तन्दर्शित की है । यह सम्भवतः सुग्रीव द्वारा प्रेषित वानरदल की उपलब्धियों की महत्त्व देने के लिए किया गया है । उसी की तुलना पर हनुमान लंका के लिए प्रस्थान करते हैं [अंक 2/1] ।

दशरथ की उपस्थिति

प्रतिमा की ही भाँति इस नाटक कीभी समाप्ति अभिषेक से होती है । अभिषेकोपरान्त राम अयोध्या के लिए प्रस्थान करते हैं । दशरथ की आशा से उनकी उपस्थिति में अभिषेक सम्पन्न होता है । "यम, कुबेर, वसु तथा इन्द्रादि देवों से युक्त हमारे आर्य दशरथ-वचनानुसार अभिषिक्त होकर देवास्त्रि इन्द्र के सम्मान दिखायी पड़ रहे हैं इस प्रकार तदमथ के कथनीपरान्त राम कहते हैं - "वस्तु मंगलसुत्र-आबद्ध हो जाने के बाद मद्रातनाम्न करके भी जिन्होंने माता की अभिलाषा पूर्ण करने के लिए मेरा अभिषेक कर रहे हैं [अंक 6/33-34] । पिता की अपूर्ण इच्छा की पूर्तत्व देने की दृष्टि से यह कल्पना सम्भवतः मात ने की ।

इस प्रकार मात ने इस नाटक में कुछ मौलिक कल्पनाएँ अवश्य की हैं, पर नाट्य कला की दृष्टि से इनका विशेष महत्त्व नहीं है ।

तृतीय अध्याय

"प्रतिमा" एक आलोचनात्मक अध्ययन

तृतीय अध्याय

भारतीय नाट्यशास्त्र में व्यक्त के वस्तु, नेता तथा रस - इन तीन तत्त्वों के आधार पर किसी भी व्यक्त की आलोचना करने का निर्देश दिया गया है । पाश्चात्य पद्धति कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देह-काल, ज़ेमी और उद्देश्य इन 6 तत्त्वों को भी मानती है साथ ही उसके साथ रंगमंच की अभिनयता नामक सातवें तत्त्व को भी समाविष्ट करती है । किन्तु भारतीय तत्त्वों में पाश्चात्य सात तत्त्व अन्तर्द्विमान हो जाते हैं । चरित्र-चित्रण का नेता में, क्योंकि भारतीय काव्य सर्व नाटक के रस परक होने के कारण चरित्र-चित्रण अथवा ज़ील-पेचित्र्य मात्र कवि या नाटककार का लक्ष्य नहीं होता । नाटक शब्द में भारतीय नाट्य शास्त्र नायक के अतिरिक्त नायिका आदि सभी पात्रों का समाविष्ट करते हैं । कथोपकथन का समाविष्ट भारतीय पद्धति में वस्तु के अन्तर्गत हो जाता है किन्तु यह रस का व्यञ्जक होने के कारण उसका भी अंग माना जा सकता है । देह-काल, ज़ेमी व उद्देश्य तीनों का समाविष्ट रस में हो जाता है । अभिनयता तो नाटक की विशेष प्रकृति है अतः उसे अलग से तत्त्व मानना उचित न होगा ।

दशरूपककार धनञ्जय ने अपने ग्रन्थ में व्यक्त भेद पर स्पष्टतया "वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः" कह कर वस्तु नेता तथा रस को भेदक तत्त्व कहा है । हन्हीम रूपों में कथावस्तु की प्रधानता सर्व रस पोषण में सहायिका होने के कारण इसे भेद का आधार माना है तथा नेता की प्रकृति तथा गुणों का भिन्नता के आधार का भी विशेष स्थान रखा है ।

कथावस्तु

इतिवृत्त को कथावस्तु अथवा वस्तु के नाम से भी जाना जाता है । इसे नाट्य का शरीर कहा गया है । जैसे किसी भी प्राणी को हम शरीर के बिना जीवित नहीं देख पाते उसी प्रकार इतिवृत्त के बिना नाट्य का रूप सम्मुख आ ही नहीं सकता । इतिवृत्त के आधिकारिक तथा प्रार्सगिक दो भेद कहे गये हैं ।¹ पल

1. तत्राधिकारिकं मुख्यमंगं प्रार्सगिकं चिदुः ।

पर स्थापित प्राप्त करना अधिकार कहलाता है, उस फल का स्वामी अधिकारी कहलाता है, उस फल का उपभोगता के द्वारा फलप्राप्ति तक निर्वाहित कृत कथा आधिकारिक कहलाती है। जैसे रामायण काव्य में राम तथा सीता का कृतान्त। इसी आधिकारिक कथा के अंग रूप में जिन उपकथाओं का समावेश होता है तथा प्रसंग से जिसका स्वयं का फल भी सिद्ध हो जाता है वह प्रासंगिक इतिवृत्त है। जैसे सुग्रीव कथा का प्रयोजन बालि-वध तथा राज्यलाम तथा विभीषण कथा का प्रयोजन लंका - राज्य है। इस प्रासंगिक इतिवृत्त के भी पताका व प्रकरी नामक दो भेद हैं। प्रासंगिक कथा अनुबन्ध सहित होती है तथा स्वरूप में दूर तक चलती रहती है यह पताका कही जाती है। रामायण की कथा में सुग्रीव-विभीषण का पताका है जो दूर तक चलती है, वह मुख्य नायक के पताका चिन्ह की तरह आधिकारिक कथा तथा मुख्य नायक की पोषिता होती है, पताका का नायक भिन्न होता है, वह पताकानायक कहलाता है। जो कथा केवल एक प्रदेश तक सीमित रहती है, वह प्रकरी कहलाती है। रामायण की संक्षिप्त कथाएँ श्वरी आदि प्रकरी है।

नेता

नाटक के फल का उपभोगता नायक होता है। वह अधिकारी कहलाता है जो नाटक में प्रमुख पात्र भी होता है। नाट्यशास्त्र में उसके गुणों का सर्गोपरान्त विवेचन प्राप्त होता है जो नेता का पर्यायवाची बन गया है। नेता शब्द की व्युत्पत्ति नी धातु से हुई है जिसका अर्थ होता है ले चलना। नेता शब्द से मानवीय गुणों और सीमाओं से सीमित होते हुए भी अपने सम्मुख उपस्थित घटनाओं को इच्छित उद्देश्य की ओर अग्रसर करने वाले व्यक्ति का बोध होता है। दशरूपक में धन्वज्य ने उसे विनीत, मधुर, दक्ष, प्रियवद, पवित्र लोगों को बुझ करने वाला, वाग्मी, पवित्र मन वाला, स्तुर्वज स्थिर युवा, बुद्धिमान, प्रज्ञावान, समृद्धि सम्पन्न, उत्साही, नास्त्रयक्षु, आत्मसम्मानी, कुरवीर, दृढ़ तेजस्वी और धार्मिक प्रवृत्ति तथागी पुरुष माना है। नायक में शीमा, विलास माधुर्य, गाम्भीर्य, स्थिरता, जिलासिध्य और औदार्य नामक आठ सात्त्विक या पौष्टिक गुण भी पाये जाते हैं। बड़े हुए से बढ़ने की कामना करता है और वह नीच से घुमा करता है। उसमें शीर्य शीमा वीरता का प्राधान्य तथा क्षिप्रकारिता पायी जाती है। गुणों

के या स्वभाव के अन्तार नायक के चार भेद होते हैं - धीरललित, धीरशान्त, धीरोदात्त व धीरोद्धत । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि नायक का हर अवस्था में चाहे वह किसी भी प्रकार का हो धैर्यवान¹ होना आवश्यक है और अनिवार्य है ।

धीरललित

धीरललित नायक चिन्तामुक्त, कलाप्रिय² और कोमल स्वभाव निश्चिन्त व्यक्त होता है । "स्वप्नवासवदात्तम्" के नायक उदयन को धीरललित नायक की श्रेणी में रखा जाता है ।

धीरशान्त

धीरशान्त नायक ब्राह्मण या वैश्य होता है जिसमें उसके गुण आदि के अनुसार 8 सामान्य गुण विद्यमान रहते हैं ।³ प्रकरण का नायक धीरशान्त हुआ करता है । "मुष्कटिक" का नायक हत्ती श्रेणी का माना जाता है ।

धीरोदात्त

धीरोदात्त नायक अत्यन्त शक्तिशाली, क्षमावान, अति गम्भीर, दृढ़ज्ञाती, गर्वशून्य, विनययुक्त किन्तु साहसी पुरुष होता है । वह मनीषियों के अतिरेक से कर्तव्यविमुख नहीं होता है इसीलिए उसे महासाहस्य कहते हैं । धनन्जय का कथन है⁴ कि वह अपनी भावनाओं पर अंकुश रखने वाला, अपनी प्रज्ञा आप न करने वाला, क्षमावान, स्थिर चित्त विनयी और दृढ़ज्ञाती होता है । रामकथाव्रित्त रूपों में राम इसके उदाहरण हैं । नागानन्द का जीमूतवाहन भी हत्ती कीटि का नायक है ।

1. रूपक रहस्य , पृष्ठ 88

2. निश्चिन्तो धीरललितः कलासर्वत सुखी मूढः ।

- दशरूपक 2/3

3. दिजातिक की व्याख्या करते हुए धनिक ने क्षत्रिय राजा या राजकुमार के अतिरिक्त श्रेष्ठ सभी को दिजातिक कहा है । उन्होंने विपुल कहकर उसे स्पष्ट कर दिया है ।

रूपक रहस्य पृष्ठ - 88

4. दशरूपक 2/4

धीरोदत

धीरोदत नायक मायावी, उली, यमल, अहंकारी, अस्हन्शील, आत्मप्रज्ञेय और अमर पुस्तक होता है। वह ईश्वर और दर्पयुक्त भी होता है। धनञ्जय के अनुसार रावण इस प्रकार के नायक का सुन्दर उदाहरण है।

संस्कृत नायकों की प्रमुख विशेषता होती है कि वे प्रारम्भ से अन्त तक एक ही प्रकार के रहते हैं। यदि आरम्भ में नेता धीरलक्षित है तो वह अन्त तक वैसा ही बना रहता है। अन्य गौण पात्रों के स्वभाव में कहीं-कहीं परिवर्तन भी दिखाया जाता है। नायक का हृदय परिवर्तन नहीं हुआ करता है। यही उपयुक्त भी है क्योंकि वह तो फल का अधिकारी होता है। वह सत्य का समर्थन होता है तथा उसके कार्य कथा के माध्यम से शिक्षा तथा आनन्द के कारण बनते हैं। आस्य वह तो दूसरों को परिवर्तित करने वाला अधिक और अटल चरित्र वाला हुआ करता है, उसके चरित्र में परिवर्तन नहीं होता है।

रस

भारतीय नाट्यशास्त्र में रसविषयना का विशेष स्थान है। काट्य में "रस" की स्थिति भरत के भी पहिले से चली आ रही है। वैदिक संहिताओं में रस सम्बन्धी तन्मय अनुपलब्ध है किन्तु उपनिषद् साहित्य में रस को ब्रह्म के साथ समीकृत कर उसे सर्वोच्च स्थान तक पहुँचा दिया गया है - रसो वै सः के रूप में रस ब्रह्म की कल्पना उपनिषद् कालीन ऋषियों के द्वारा काट्य तत्त्व के यथार्थ पहचान का सर्वोत्तम उदाहरण है। यहाँ यह नहीं भूलना चाहिए कि सम्पूर्ण भारतीय चिन्तन धारा चाहे वह ललित कला विषयक हो अथवा सौन्दर्य विषयक या फिर भी ही किसी वैज्ञानिक विषय से ही सम्बन्धित क्यों न हो सभी पर आध्यात्मिकता का गहन प्रभाव है इसीलिए रस को भी, जिसे सामान्य शब्दों में आनन्द या सुख कहा जा सकता है, ब्रह्म के रूप में परिकल्पित किया गया है। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि सम्पूर्ण उपनिषद् वाङ्मय में सुख और आनन्दवाची शब्दों को ब्रह्म के पर्याय के रूप में ग्रहण किया गया और रहने की आवश्यकता नहीं कि काट्य में भी रसानुभूति को सुखानुभूति के साथ ही देखा गया है।

आनन्द प्राप्त अथवा सर्वविध सुख प्राप्त प्राप्ति मात्र की प्रथम और

अन्तिम अभिलाषा होती है। इसके अभाव में जीवन निःसार हो जाता है अतः जीवन का प्रथम लक्ष्य होने के नाते भारतीय मनीषियों ने ज्ञान-विज्ञान और अध्यात्म के क्षेत्रों में आनन्द की सर्वत्र व्याप्ति स्वीकार की गयी है। काव्य जीवन का ही प्रतिबिम्ब होता है। अतः उसका उद्देश्य जीवन के उद्देश्य से कैसे अलग हो सकता है। रस या आनन्द काव्य का मात्र उद्देश्य ही नहीं उत्पन्न भी है।

रस की व्यापकता का आकलन भारतीय मनीषियों ने यद्यपि उपनिषद् काल में कर लिया था फिर भी उसका उस रूप में विवेचन उपनिषद् ग्रन्थों में नहीं पाया जाता जिस रूप में वह काव्य में समझा जाता है। वाल्मीकि के आदि काव्य में रस सम्बन्धी विवेचन के लिए अवकाश नहीं यद्यपि उसमें अंगी रस के रूप में कल्प रस इतना सञ्चित बनकर उभरा कि तत्कृत अभिव्यक्ति फिर कभी नहीं हो सकी। महाभारत में भी रस सम्बन्धी विवेचन के लिए कोई स्थान नहीं है। पुराणों में भी अग्नि पुराण ही एक मात्र ऐसा पुराण है जिसमें रस के ऊपर चर्चा मिलती है। और उस चर्चा की बाद में प्रमाण के रूप में समुद्धृत किया गया। लेकिन अग्नि पुराण को चौथी शताब्दी से लेकर सातवीं शताब्दी तक के मध्य की रचना माना जाता है और उसके बारे में यह मत व्यक्त किया गया कि अग्नि पुराण में उपलब्ध विभिन्न शास्त्र सम्बन्धी चर्चा पहले से ही उपलब्ध विज्ञान वाङ्मय के स्वीपीकरण व सूत्रीकरण की प्रवृत्ति का भी परिणाम है। अतः अग्नि पुराण में उपलब्ध रस सम्बन्धी विवेचन अपेक्षाकृत अर्वाचीन ही माना जाता है और अभी तक उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर भारत को ही प्राचीनतम रस सिद्धान्त का प्रतीक माना जाता है।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से रस के निम्नलिखित दो अर्थ किये जा सकते

५ -

1. रस्यो आस्वाद्यी इति रसः अर्थात् जिसका भी स्वाद लिया जा सके वही रस है एवं
2. तरौ इति रसः अर्थात् रस द्रव्य पदार्थ है। इसमें रस के प्रवर्तन पर बल दिया गया है।

रस की प्रामाणिक परिभाषा भारत ने अपने सूत्र "विभाषानुभाष-

व्यभिचारीसंयोगाद्गतनिष्पत्तिः" के द्वारा व्यवस्थित रूप में का जिसका आशय यह है कि विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग से अर्थात् मिश्रण से स्थायी भाव रस रूप में परिणत हो जाता है । उन्होंने इसकी व्याख्या में दैनिक जीवन से सम्बन्धित उदाहरण दिया है जिससे भाव हृदय में सुगमता से भर जाता है । जिस प्रकार नानाविध व्यंजनों के मिश्रण से भात में एक किण्वजन आस्वाद का अनुभव किया जाता है उसी प्रकार विद्वज्जन भावों और अभिनयों से सम्बद्ध स्थायी भावों का आस्वादन करते हैं । भरत के इस सूत्र की व्याख्या विभिन्न विद्वानों ने अपने - अपने ढंग से की है जैसे काव्य-प्रकाश और साहित्य दर्पण आदि में देखा जा सकता है ।

भारतीय आलंकारिकों की दृष्टि में रस आनन्दात्मक ही होता है परन्तु कतिपय विद्वान् रस को दुःखात्मक मानने के पक्ष में हैं । "नादयदर्पण" के रचयिता रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने इस मत का विस्तार से विवेचन किया है । पण्डित-राज जगन्नाथ और अभिनवगुप्त के द्वारा रस की मीमांसा प्रामाणिक मानी गयी है । इसमें भी अभिनवगुप्त का मत सर्वमान्य है । वे कहते हैं कि आनन्द ही रस है । रस एक है अनेक नहीं । रस, रस ही है । उसके लिए अन्य किसी पर्यायवाची शब्द की आवश्यकता नहीं है । जिस प्रकार ब्रह्म की एक मात्र सत्यता है और नानात्मक विकृतियाँ असत्य हैं उसी प्रकार हुंगार हास्य आदि रस की अनेकता और पार्थक्य वस्तुतः असत्य है । हुंगार आदि रस उसके अंशमात्र हैं । अभिनवगुप्त ने रस को "महारस" शब्द व्यवहृत किया है तथा अंशभूत रसों को केवल रस कहा है । अतः भवभूति के शब्दों में एको रसः तथा उसकी एकव्यता की सिद्धि के लिए भरत ने स्वयं भी एक वचनान्त प्रयोग किया है । "न हि रसाद् द्वौ कश्चिदर्थः प्रकीर्ते" मूलतः रस एक ही है और स्थायी भाव की मिश्रता के कारण उसी से नाना रसों का उदय होता है । उस प्रकृत रस के विषय में भवभूति¹ ने कल्प रस

1. एको रसः कल्प एव निमित्तभेदा -

दिग्भन्नः पृक् पृथमिवाप्रकीर्तितान् ।

आर्षाद्बुद्धुदतरंगमयान् विकारा -

मम्मी यथा तत्किलमेव हि तत् समग्रम् ॥

की प्रधानता दी है । भोजराज भुंगार रस की प्रकृत रस मान्ती हैं, उन्होंने इसका प्रतिपादन "भुंगार-प्रकाश" ¹ में किया है । अभिनवगुप्त ने शान्त रस की प्रधानता में अपना मत व्यक्त किया है ।

"प्रतिमा" रामायण की कथा पर आश्रित नाटक है । सुख एवं दुःखादि भावों से समन्वित राम-सम्बद्ध उपात-वृत्त इसकी कथावस्तु है । विलास-समुद्भि आदि विविध श्रेणियों का वर्णन, रसालंकारों का समुचित अभिव्यक्ति, उपात-कुलोद्भूत धीरोदात्त नायक, अंगीभूत वीररस के साथ कल्यादि रसों का समायोजन-सहित सप्ताकारिक शास्त्रीय लक्षणों से युक्त है । ² रूपक की समग्र कथावस्तु मानवजीवन की तथ्यपरक-अभिव्यक्ति का अंकुरण एवं पल्लवण करती है । इस तथ्य का विकास कथावस्तु की अर्थ-प्रकृति अर्थात् मुख्य प्रयोजन होता है । इसी अर्थ को विकसित करने वाले कार्य-व्यापार की एक क्रमबद्ध तरणि पर नाटक गतिशील होकर

1. भुंगारवीरकल्यादभूतरीद्र हास्य वीरवीभक्तवत्सल भवान्क शान्त नाम्नः ।

आम्नातिषुर्द्वरहान् सुधियो धर्म तु भुंगारमेव रसानाद रसमागमनामः ॥

भुंगार प्रकाश वी भ्रू राघवन् पृ 501

2. नाटकं उपातवृत्तं रथात् पंचसन्धिसमन्वितम् ।

विलासद्वयादिगुणवदयुक्तं नानाविभूतिभिः ॥

सुकुटुःखसमुद्भूति नाना रसनिरन्तरम् ।

पञ्चाधिका दम्परास्तत्राफा परिकीर्तिताः ॥

प्रख्यातवर्जो राजर्षिधीरोदात्तः प्रतापवान् ।

दिट्यो य दिट्या दिट्यो वा गुणधान्नायकोमतः ॥

एक एव मन्दंगी भुंगारो वीर एव वा ।

अंगमन्य रसाः सर्वे कार्यो निर्बहणोऽद्भुतः ॥

वत्तारः पंच वा मुख्याः कार्यव्याप्तपुरुषाः ।

गोपुच्छागममर्गं तु वन्द्यं तस्य कीर्तितम् ॥

साहित्यदर्पण परिच्छेद 6

प्रमुख प्रयोजन की प्रतिस्थापना करता है । व्यापार की इस सरणि को अवस्था की सहा मास्रीय विधानों ने दी है । यही अर्थ-प्रकृति अथवा सन्धि भी कही जाती है । ये पाँच हैं -

1. मुखसन्धि

"आरम्भ" अवस्था और अर्थ-प्रकृति "बीज" का संयोग ।

2. प्रतिमुख-सन्धि

"प्रयत्न" अवस्था एवं "बिन्दु" अर्थ-प्रकृति के कार्य-व्यापार की गतिशील करती है ।

3. गर्भ-सन्धि

"प्राप्तयाज्ञा" अवस्था तथा अर्थ प्रकृति "पताका" दोनों के मध्य की स्थिति । तात्पर्य यह है कि यहाँ आरम्भ त "बीज" कभी गुप्त, कभी अन्वेषित होता रहता है ।

4. विमर्श सन्धि

इसमें अवस्था "निष्ठापित" और "प्रकरी" अर्थ-प्रकृति समाहित होती हैं ।

5. निर्वहण सन्धि

इसमें अर्थ प्रकृति "कार्य" एवं "फलागम" अवस्था का संयोग रहता है । नाटक की इन पाँचों सन्धियों का सम्पूर्ण निर्वहण उसे सफल बनाता है । हम आगे मुखादि पाँचों सन्धियों के निर्वहण का आकलन प्रस्तुत कर रहे हैं -

नाटक का प्रारम्भ "नान्तास्मै ततः प्रविशति सुप्रधार!" से होता है । नाटक का मुख्यफल अथवा कार्य "राम-राज्याभिषेक" का "बीज" रूप से प्रारम्भतः प्रतिष्ठापित कर फिर उसमें व्यवधानीयस्थिति द्वारा राम को वनवास दिलाना है -

1. आशीर्वाद्यन्तर्गुह्यता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।

देवद्विजन्पादीनां तस्मान्नान्दीति संहिता ॥

मुःसन्धि

समस्त प्रथमार्क इस सन्धि के अन्तर्गत है । राम के राज्याभिषेक सम्बन्धी-समारोह के मुख्य विविध¹ वाचों का स्वर एवं इसी क्रम में परिवारिका द्वारा वल्कल लिए परिवारिका का सीता के समीप उपस्थित² होने का दृश्य "प्रारम्भ" नामक अवस्था का आभास कराता है । यह अवस्था राम के निर्वासन-पर्यन्त बनी रहती है । राम एवं सीता का समग्र वातालाप, अर्थात् वाच³-एवम् अमुक एवं "बीज" रूप अर्थ प्रकृति में व्यवधान के परिणाम-स्वरूप प्रारम्भ अवस्था विकसित होती है । दशरथ की दयनीय अवस्था का वर्णन कर लक्ष्मणी राम की वनगमन से विरत करना चाहता है परन्तु राम अपने निश्चय तथा पिता दशरथ की आज्ञा को तत्क्षिप्त प्रतिपादित⁴ करते हैं ।

1. इदानीं भूमिपालेन कृतकृत्याः कृताः प्रजाः ।

रामाभिधानं भेदिन्यां ज्ञातकमभिधिचिताः ॥ प्रथमार्क / 4

x x x x x

आरब्ध पट्टे द्विती गुत्तने मद्रासने लक्ष्मणे । प्रथमार्क / 5

2. अहो अत्याह्वितम् । परिहासेनापीमं वल्कलमुपनयन्त्या ममेतावद्
मयमासीत्, किं पुनर्लोभेन परधनं हरतः । । अवदातिका कथन ।

3. एकपदे अवपद्य तुष्णीकः पटहञ्जदः संवृतः ।

सीता - को न कुद्रातोऽभिहितम् । अथवा बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम ।

4. कांचुकीयः - कुमार । न कु न गन्तव्यम् । एष हि महाराजः ।

ब्रुवा ते वनगमनं व्यसहार्यं, तौम्यप्रव्यवसित लक्ष्मणानुयात्रम् ।

उत्थाय क्षितितलोष्णुक्षितांगः, कान्तारगिरिद हवीपयाति जीर्णम् ॥

x x x x x x x 1/30

लक्ष्मणः - आर्य ।

योरमात्रोत्तरीयाणां किं दृश्यं वनवासिनाम् ।

गौणवत्मासु राजा न शिरः स्थानानि पश्यतु ॥

प्रथमिक में "धीज" नामक अर्थप्रकृति एवं "प्रारम्भ" नामक अवस्थाओं का सम्पर्क संयोग है ।

प्रतिमुख - तन्धि

यद्यपि "बिन्दु" अर्थप्रकृति का आभास वनगमन से ही प्राप्त होने लगता है परन्तु "प्रयत्न" नामक अवस्था का अङ्कुरण दशरथ के प्राण-त्यागोपरान्त ही होता है अतएव द्वितीयक प्रतिमुखतन्धि का निर्वाहक है । "प्रयत्न" नामक अवस्था राम के कथन -

वनगमननिवृत्तिः पार्थिवस्थैक्यावन्मम पितृपरवृत्ता बालभावः स एव ।

नवनृपतिविमर्शे नास्ति रीका प्रजानामथ च न परिमोगिर्वन्विता भ्रातरो मे ।

प्रथमिक / 14

से परिलक्षित होती है । "बिन्दु" अर्थ प्रकृति राम के निवर्तित होने की घटना से [प्रथमिक] आरम्भ होकर क्रमशः द्वितीयक पर्यन्त विकसित होती है । "बिन्दु" अर्थ प्रकृति की पूर्ण परिणति एक प्रकार से राम-विपीन से दशरथ का सन्तप्त होना अन्ततः उनका मरण¹ में पहुँचती है । कीर्त्तया दारा² उनको बार-बार सान्त्वना देने की घटना और अनुकूल परिणाम-पर्यन्त प्रतिमुख-तन्धि "बिन्दु" अर्थप्रकृति एवं "प्रयत्न" अवस्था दोनों के संयोग से सम्पन्न होती है ।

1. एष हि महाराजः सत्यवचनरक्षकपरं राममरणं गच्छन्मुमपावर्त्तयितुमशक्तः

पुनर्विरहशोकाग्निना दग्धहृदय उन्मत्त इव बहु प्रलपन् समुद्रगुहकेनयानः ।

सूर्य इव गतो रामः सूर्यं दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः ।

सूर्यं दिवसावसाने धायेव न दृश्यते तीता ॥

अंक 2/7

2. देखी - महाराज, समाश्वसतिहि, समाश्वसतिहि ।

राजा - ओं मे त्पुत्र कीर्त्तये, न तर्वां पश्यामि यक्षुषा ।

रामं प्रति गता बुद्धिरद्यापि न निवर्तते ॥

अंक 2/18

राजा - राम, येदेहि, । लक्ष्मण, अहमितः पितुर्वां स्कारं
गच्छामि । हे पितरः । अयमयमाच्छामि ।

गर्भ-सन्धि

तृतीयांक का प्रारम्भ नगर में प्रतिष्ठित प्रतिमागृह में संस्थापित मृत महाराज दशरथ के प्रतिमा दर्शनार्थ कौशल्यादि रात्रियों का गमन एवं रथारूढ भरतागमन¹ से होता है। भरतप्रसंग रूप अर्थप्रकृति "पताका" एवं "प्राप्तयाज्ञा" अवस्था से अभिगमित यहाँ गर्भ सन्धि है। राम-राज्याभिषेक रूप नाटक-फल "बीज" दृष्टिगत होकर अदृष्ट होता रहता है, उसका दृष्ट रूप आभासित कराने का प्रयास अविच्छन्न चलता है। भरत उस प्राप्तयाज्ञा² की पूर्ति-हेतु प्रवृत्त होते हैं अतएव नाटक के फल का प्रकारान्तर से निश्चय होना प्रतीत होता है।

चिमरी सन्धि

"नियताप्ति" अवस्था एवं "प्रकरी" अर्थप्रकृति का संगमन तृतीय अंक में भरत द्वारा गुरुजनों एवं नगरवातियों का अनुरोध न मान अभिषेक अस्वीकार राम को वापस बुलाने के लिए प्रस्थान-निर्णय की घटना से प्रारम्भ³ हो जाता है।

1. भटः - ननु मया संदिष्टो भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यविभ्रष्टकृतसंतापेन स्वर्ग गतस्य भर्तृदशरथस्य प्रतिमागृहं द्रष्टुमद्य कौशल्यापुरोगैः सर्वैरन्तः पुरैरिहागन्तव्यमिति । - अंक - 3
 x x x x x
 भरतः - साधेगमः सुत । पिरं मातुलपरिचयादक्लिातवृत्तान्तोऽस्मि ।
 भूतं मया दृष्टमकल्पशरीरो महाराज इति । तदुच्यताम् पितुर्मे को व्याधिः ।
 सुतः - हृदयपरितापः उलु महान्
 भरतः - किमाहुस्तं व्याधिः
 सुतः - न उलु भिषजस्तत्र निपुणाः
 भरतः - किमाहारं भूति जयन्मपि
 सुतः - भूमौ निरञ्जनः
 भरतः - किमाज्ञा स्याद्
 सुतः - देव
 भरतः - स्फुरति हृदयं वाहय रथम् । - 3/1
2. तत्र यास्यामि यत्रासी ब्रह्मक्षेत्रम् कर्तुं लक्ष्मणप्रियः ।
 नायोध्या तं विनायोध्या सायोध्या यत्र राघवः ॥ - अंक 3/24
3. वयं तत्र भवान् ममायौ रामः । ववासी महाराजस्य प्रतिनिधिः । - अंक 4
 x x x x x x x x
 इह स्थास्यामि देहेन तत्र स्थास्यामि कर्मणा ।
 नाम्नेव भक्तो राज्यं कृतरक्षं भविष्यति ॥ - अंक 4/19
 x x x x x x x x
 पितुर्नियोगादहमागतीवर्त्तुं न वत्त । दर्पान्न न भयान्न विभ्रमात् ।
 कुलं च नः सत्यधर्मं ब्रवीमि ते कथं भवान् नीचपथे प्रकृति ॥ - अंक 4/20
 x x x x x x x x
 पादोपभूते तव पादके मे स्ते प्रयच्छ पुण्याय मधुना ।
 यावद् भवानेक्ष्यति क्षीयति हि तावद् भविष्याम्यनयो विधेयः ॥ अंक 4/25

भरत का वन में जाना, राम द्वारा वरण्यादुका दिया जाना, रामादेव के अनुकूल राज्य-रक्षण, उसके पश्चात् तपोवन में पितृ-ब्राह्म सन्दर्भ में रावणागमन¹ सीताहरण आदि लघुपुस्तकों से पूर्ण प्रकरी । अर्थप्रकरी । "बीज" को फलीभूत होने से सतत् क्लिप्तिवत् करते रहते हैं । इस प्रकार षष्ठांक के "विष्कम्भक" पर्यन्त समग्र कथानक को हम "विमर्श-सन्धि" के अन्तर्गत रख सकते हैं ।

निर्वहण सन्धि

रावण के वधोपरान्त "फलागम" अवस्था एवं "कार्य" अर्थप्रकृति आभासित होने प्रारम्भ होते हैं । "फलागम" तक "निष्ठापित" क्लिप्तिवत् होती-होती "विष्कम्भक" में सुमन्त्र द्वारा सीताहरण का² पुनः, भरत का माता कैकेयी को

1. श्वस्तत्रभवस्तातस्यानुसन्धत्त ब्राह्म विधिः

गच्छन्ति तुष्टिं कुरु येन केन त एव जानन्ति हितदिनां मे ।

ब्रूयामि पुनर्वा य तथापि कर्तुं तातस्य रामस्य य तानुत्साम् ॥

अंक 5/5

रावणः - एव भीः ।

निष्कामनिष्कात्मा स्वमेताद् गृहीत्वा ।

वरयक्षुतविरं राघवं वधयित्वा ।

स्वरपदपरिहीर्षां हृद्यधारामिवाहं ।

बन्धुपुत्रतां तर्हि हर्तुकामः प्रयामि ॥ - अंक 5/7

x x x x x

रावणः - रामं वा भरणमुपेहि त्वमर्षं वा

स्वर्गस्थं दण्डयमेव वा नरेन्द्रम् ।

किं वा तयात् कुपुत्स्यतीतिर्वधीमिः -

न तयात् मुगश्चिवः प्रथयन्ति ॥ - वही / 18

सीता - आर्यपुत्र, परित्रायस्व, परित्रायस्व । तौमित्रे ।

परित्रायस्व, परित्रायस्व माम् ।

2. सीता मायामुपाश्रित्य रावणेन ततो हता ॥

- अंक - 6/11

उपासम्भूत करना, श्रुति का ज्ञाप-ज्ञान, कैकेयी द्वारा " मे कैवल्य वीरदह दिवस कहना चाहती ।" यी "आदि समग्र कृतान्त से अवगत हो, राम की साहाय्य निमित्त सैन्य एवं माताओं, बान्धवोंसहित भरत का प्रस्थान² आदि घटनारं "फलागम" रूप को उपलब्ध करने के लिए हेतु हैं । अन्त में भरत का सत्माज जनस्थान पहुँचना "निर्दहक-सन्धि" का स्पष्ट उपक्रम है । भरत जनस्थान में ही उन्का न्यास रूप अधीष्टया का राज्य राम के चरणों में समर्पित कर³ देते हैं । अन्त में भरतवाक्य - "जैसे राम-जानकी बन्धुओं सहित आये, उसी प्रकार लक्ष्मी [सम्पत्ति-सहिता] से युक्त राजा भूमि का शासन करता रहे ।"⁴ इस प्रकार "निर्दहक-सन्धि" पर्यायिक से ही आभासित बबठारिक के "चिह्नकम्पक" में पल्लवित

1. जातु स्तन्निमित्तमपराधे मां निक्षिप्य पुत्रको रामो वनं प्रेषितः । न तु राज्यलोभेन । अपरिहरणीयो महर्षिज्ञापः पुत्रविप्रवासं तिसा न भवति ।

x x x x x x x

जातु यतुर्दंष्ट्र दिवसा इति वक्तुकामया पर्याकुलहृदयया यतुर्दंष्ट्र वषांजीत्युक्तम् ।

- ओं 6

2. आपृच्छाम्यन्नभक्तीम् । अधिवाहं आर्यस्य साहाय्यार्थं कृत्स्नं राज्यं प्राप्नुयामि । अयमिदानीं -

केलामिमां मत्तगजान्धकारां करोमि सैन्योपनिधिबन्धाम् ।

बलेस्तरम्भिदः नयामि तुल्यं ग्लानिं समुद्रं सह राक्षसेन ॥ - ओं 6/16

3. भरतः - अनुगृहीतोऽस्मि । आर्ये प्रतिगृह्यतां राज्यभारः ।

x x x x

अधिगतान्पञ्चदं धार्यमाणातपत्रं

चिकित्ताकृतमीलिं तीर्थतोयामिबिबतम् ।

गुह्यमधिगतलीलं वन्द्यमानं जनोप -

नैवज्जिनिमिवायं पश्यतो मे न तुष्टिः ॥ - ओं 7/12

4. यथा रामश्च जानक्या बन्धुमिश्र समागतः ।

तथा लक्ष्मया समायुक्तो राजा भूमिं प्रजास्तु नः ॥

- ओं 15

होकर, विकास को प्राप्त होती हुई सप्तमार्ग में समाप्त होती है। राज्याभिषेक "राम का रूप नाटक का फल प्राप्त हो जाता है।

"प्रतिमा" नाटक में भास ने नाटक की कथावस्तु, पाँचों अर्थप्रकृतियों, पाँचों अवस्थाओं तथा पाँचों सन्धियों का सफलतापूर्वक निर्वह किया है।

नाटक - तत्त्वों के निक्षेप पर शास्त्रीय-परीक्षोपरान्त हम "प्रतिमा" में कवि की रस योजना पर विचार करेंगे। "प्रतिमा" का प्रधान रस कल्मष है और अन्य रस इसी के सहायक बनकर आये हैं। महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री इसमें "धर्मवीररस का अस्तित्व स्वीकार करते हैं, पर यह मात्र उदा है। वनवास का प्रसंग उपस्थित होने पर लक्ष्मण के वधनों में वीररस प्रस्फुटित हुआ। ऐसे कल्मष का प्रसंग व्यापक है।¹

रस - योजना

"प्रतिमा" नाटक वस्तुतः भास की नाट्यकला का निक्षेप है। कल्मष-रस की दृष्टि से तो महाकवि भवभूति को गौरव सम्मिलित: "प्रतिमा" के अनुशीलन-पूर्व प्राप्त हुआ। नाटक का द्वितीयक जिस कल्मष-सागर को जन्माता है, उसके तट पर पहुँचकर क्लृप्तदय भी धीरे धीरे बैठता है - पुरा नगर, परिवेष्ट, प्राणिसमूह उसमें मग्न है -

नागेन्द्रा यवतामिलाध्विमुखाः सारक्षणा वाजिनी,

हेषाङ्गन्यमुखाः सक्लवन्तिबालाशय पीर जनाः ।

रयक्ताहारकथाः सुदीनवदनाः रुन्दन् उत्थेदिश

रामो याति यथा सदारसहजस्तामिव पश्यन्त्यमी ॥

- अंक 2/2

राम-सीता-लक्ष्मण वन के लिए प्रस्थित हो गये। बंशुकी राम से रहित अयोध्या का स्वरूप उपस्थित कर रहा है - गजराजों ने आहार बन्द कर दिया है, घीहों के नेत्र अनुपूरित हैं, वे दिनदिनाना होठ चुके हैं, कुं कुं ।

हत्री, बालक सबके सब नगर-निवासी आहार ग्रहण करना भूल गये हैं। उच्च स्तर से रोदन करते रहने से उनकी मुखाकृति मलिन हो गयी है। सभी राम, लक्ष्मण व सीता के जाने वाले मार्ग की ओर टकटकी लगाये देख रहे हैं। इसी प्रकार प्रतिमा-गृह में पिता दशरथ की प्रतिमा देख मूर्च्छित पड़े भरत की माताओं द्वारा संयत किये जाने पर उनकी कल्प दशा -

वयमयज्ञता वीरेणार्थं नृपो गृहमृत्युना,
प्रततरुदितः कुत्स्नायीध्या मुनेः सह लक्ष्मणः ।
दक्षिततनया शोकैनाम्बा तनुबाधवपरिभ्रमे -
धिगिति वयसा वीरेणात्मा त्वया ननु योजिताः ॥

- अं 3/17

वह अपनी माता कैकेयी को उपालम्भित करते हुए कहते हैं - तुमने अपने कठोर वचनों द्वारा मुझे अपयज्ञ का पात्र बनाया, राम को वल्कल धारण कराया, पिता दशरथ को मृत्यु-वरण के लिए विवश किया, समस्त अयोध्या को तनाया, लक्ष्मण को मुग-सहघर कर दिया, पुत्र-वत्सल माताओं को शोक सिन्धु में धकेला, पुत्रवधु सीता को जंगल में अटकने एवं कष्ट भोगने के लिए भेजा साथ ही स्वयं को भी धिक्पात्र बना डाला। पुत्रविहीन में नृपति दशरथ की शल्या द्वारा संज्ञा में लाये जाने पर कहते हैं -

अंग में स्पृश कोशस्थे, न त्वां पश्यामि क्लृप्ता ।
रामं प्रति गता बुद्धिरद्यापि न निर्वर्ति ॥

अं 2/18

कोशस्थे, मेरा अंग स्पर्श करो, तो "तुम्हारी स्थिति का आभास मैं कर सकूँ, मैं जानूँ कि तुमको देख नहीं पा रहा हूँ, मेरी तो तारी बुद्धि ध्वस्त है।" राम की ओर जो लगी वह अभी तक वापस नहीं आ पा रही है। यहाँ स्थायी-भाव शोक रामास्मरण के कारण उद्दीप्त हो रहा है, प्रिय राम के अदर्शन में जड़ता बढ़ती जा रही है। इसी प्रकार पूर्वोद्धृत छन्दों में आबालपृष्ठ नर-नारी के रोदन से शोकस्थायी भाव, प्रतिमागृह में पिता दशरथ की प्रतिमा को देखते, उनकी मृत्यु - सुचना से शोक स्थायी भाव उद्दीप्त होकर भरत के मन में कल्पौद्रिक हो रहा है, वह धेतना ही होती है, संज्ञा प्राप्त करने पर राम, लक्ष्मण, सीता व

माताओं की दशा स्मरण कर गतानि व्यभिचारी भावाकान्त मन की कल्याण बाह्य जगत् को परिदृष्टाप्त कर कल्याण रस की सृष्टि कर रही है । ओं 3/17 ।
कल्याण रस के अन्य स्वर भी द्रष्टव्य हैं ।

वीररस

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने प्रथमार्क में लक्ष्मण के कथन - "यदि महाराज दशरथ की अकेलतावस्था नहीं सह सकते हैं तो धनुष सम्हालें, दया से काम नहीं । स्वर्णों के हिलोयी शान्तिप्रिय जनों का तो इस प्रकार अह अनादर होता ही है । हाँ यदि स्वर्णों पर धनुष आप न उठा तर्क तो आप मुझे स्वतन्त्र कर दें । एक पुत्री स्वामी को स्वयम्बर करके हम सबको कपट का सहारा लेकर पराजित करें यह असह्य है । तब विश्व की युवति - वृन्ध कर डातने का मेरा हृ - संकल्प है"

1. हृदय भव त्कामं यत्कृते क्रीते रत्नं,

धुनु पितृन्विने तद गच्छ धे तावत् ।

स्फुरति तु यदि नीची मामयं मुक्तकण्ठ -

स्तव्यं च भवति सत्यं तत्र देहो विनीतयः ॥ - ओं 3/9

x x x x

हा वत्स । राम । जगतां नयनाभिराम ।

हा वत्स लक्ष्मण । सुलक्षणसर्वगात्र ।

हा साधिव भयिलि । पतिस्त्रिधा वित्तवृत्ते ।

हा हा गताः किल वने बत मे तनुजाः ॥

- ओं 2/4

x x x x

सत्यसन्ध । जित्क्रीड । विमत्तर । जगत्प्रिय ।

गुत्सुहृषि युक्त । प्रतिवाक्यं प्रयच्छ मे ॥ - ओं 2/6 सर्व ओं 2/1,3,5,7

ओं 3/10 भी कल्याण रस की अभिव्यञ्जना करते हैं ।

2. ओं 1/18

को वीररसात्मक - अभिव्यक्ति मानी है । इसके अतिरिक्त भी यद्यपि इस नाटक में युद्ध का चित्रण न के समान है तथापि तापस द्वारा युद्ध-वर्णन एवं रावण के साथ जटायु का संबंध वीररसात्मक स्थल है - "जटायु ने रावण के साथ संबंध में पूर्ण उत्साह तथा पराक्रम का प्रदर्शन किया अपने पंखों के प्रहार द्वारा उसको क्षत-विक्षत और चोंचों से उसके शरीर पर ऐसे घाव कर दिये जैसे जिना उण्डित कर दी गयी हो -

पक्षाभ्यां परिभूय वीर्यविषयं वन्दं प्रतिच्छुतो .

तुण्डाभ्यां तुनिघृष्टतीक्ष्णमयलः सवेष्टं न घेष्टौ ।

तीक्ष्णैरायतकण्टकैश्च नैर्भीमान्तरं वक्षसो

क्वग्रागैश्च दार्ष्णायविश्वमाच्छेताच्छिता पादयो ॥

ॐ 6/3

वस्तुतः इस नाटक में कल्याण रस की सर्वत्र व्याप्ति है । इस रस की समायोजना में कवि पूर्णतः सफल है । गैरी धारणा है "प्रतिमा" से प्रभावित होकर महाकवि भवभूति ने "उत्तर रामचरित" की रचना कर "कल्याणरस" की प्रतिष्ठा की जहाँ "चित्र-विधि" की कल्पना भी की गयी । मात ने प्रथमार्क में "राम के राज्याभिषेक महोत्सव" की आयोजना के बीच घेटी अवदातिका द्वारा वल्कल ले जाने का संयोग उपस्थित कर एक विनीदावसर की सृष्टि की है । विनीत में ही उससे लेकर वल्कल को सीता धारण कर लेती है - "तुला किन्तु छु ममापि तावच्छोभौ ॥ सीता के पुछने पर वह "सर्वजीवनीयं सुखं नाम" कह देती है । इससे पहिले सीता से घेटी अवदातिका वल्कल लाने का प्रयोजन परिहास बताती है - भद्रिनि । परिहासनिमित्तं छु मयेतदानीतम् ।" ¹ इस दृश्य में हास्य रस का आभास कहा जा सकता है । इसी प्रकार कविन्यासवृत्तमगन्वेक्ष्याथ रावण द्वारा [सीतापहरण से पूर्व] अपने स्वल्प के प्रदर्शन में भयानक रस प्रस्फुटित होता है !²

1. ॐ - ।

2. युद्धे येन सुराः सदानवगणः श्रुतादयो निर्जिताः

दृष्ट्वा क्षुब्धताविस्मयकरणं ह्रुत्वा हती श्रातरौ ।

दर्पाद् दुर्यतिमप्रभेयस्त्रिनि रामं विलोभयच्छतः

त तर्वा हतुर्मेना विजालनयेन । प्राप्तो त्वयहं रावणः ॥

- ॐ 5/16

पात्रों का चरित्र - विश्लेषण

कथावस्तु में पात्रों का चरित्र विशेष रूप से सहायक होता है । संस्कृत के नाट्य साहित्यों में पात्र नियोजन की जिस महत्ता को मान्यता दी उसका प्रधान कारण यही है कि पात्र अपनी मनोवृत्ति, संस्कार, वातावरण एवं विभिन्न प्रकार के सम्पर्कों के कारण जिस चरित्र को प्रदर्शित करते हैं वह चरित्र ही नाटक का मुताधार होता है और उसी के द्वारा स्पष्टकार अपने सन्देश को प्रसारित करता है । भास एक आदर्शवादी कवि हैं । "प्रतिमा" नाटक में उनके सभी पात्र पूर्णतः भारतीय-संस्कृति एवं मर्यादा के पोषक रूप में चित्रित हैं । रामायण गहिल पात्र रावण और कैकेयी तक का चरित्र यहाँ उदात्त होकर उभरा है ।

राम

रूपक के धीरोदात्त नायक हैं । राम यहाँ एक कर्मयोगी रूप में निष्काम भाव वाले किन्तु पराक्रमी व्यक्तित्व हैं । उनके चरित्र की जो प्रथम अनुभूति हमें मिलती है , वह एक अनासक्त भावी परम चिरागी व्यक्तित्व की है । राज्याभिषेक, के स्थान पर उनको वनगमन का आदेश होता है, किंचिदपि विचलित नहीं । पूरा समाज उनके धर्म पर आश्चर्य में पड़ जाता है - बाजे बजने लगे थे, गुस्त्रज उपस्थित । मैं तिहासन पर समासीन, तीर्थजलों से पूर्ण मंगल कलशों को उठा-उठाकर मेरा अभिषेक किया जा रहा था । इसी समय महाराज ने अभिषेक - कार्य रोक दिया, मुझे बुलाकर कहा "जाओ" मैं पूछता हूँ "पुत्र ने पिता के आदेश का पालन किया इसमें आश्चर्य! केसा १" कितनी मर्यादित एवं निरपृक्षतापूर्ण उक्ति है । लक्ष्मण के उत्तीर्ण होने पर वह कहते हैं - सुमित्रानन्दन । मेरा राज्यदण्ड यदि

1. आरब्धे पट्टे स्थिते गुस्त्रजे भद्रासने लक्ष्मी ,

तकन्धीद्वारणनम्यमानन्दनप्रद्योतितोऽप्येष्टे ।

राक्षाह्वय विलज्जिते मयि जनी धर्म्ये मे विस्मितः .

तवः पुत्रः कुतो पितुर्यदि वयः कस्तत्र भो । विस्मयः १

इतना उत्तेजित कर रहा है, यह उचित नहीं। राज्य को भरत भोगे या राम तुम्हारे लिये दोनों स्थितियाँ समान हैं, धनुष पर अभिमान है तो उस राजा भरत की रक्षा करो।¹

राम पूर्ण निस्पृह है। महाबाकाक्षा का लेश नहीं। राज्याभिषेक समारोह एक जगह पर उन्हें विषाद नहीं दब होता है - इससे प्रथम लाभ यह हुआ कि महाराज का वनगमन रुका, मैं पिता की छत्रछाया में संरक्षित रह गया। नया राजा कैसा होगा प्रजा ऐसी आर्कषक से मुक्त हुई साथ ही मेरे भाई भी राज्य के सुख से वंचित नहीं होने पाये।² मात ने राम के जीवन में उदारता, त्याग, सहिष्णुता, प्रेम, बन्धुता, सहृदयता, धैर्य एवं वीरता आदि गुणों का पूर्ण समावेश किया है। वे अवतारी पुत्र³ होने पर भी मर्यादा का कभी उल्लंघन नहीं करते। कैकेयी द्वारा ही भरत के लिए राज्यभोग और राम के लिए वनवास का वर दण्डवत् से माँगा गया है परन्तु राम के हृदय में माता का पूज्य भाव कैकेयी प्रति कथमपि कम नहीं होता - जिसका पति इन्द्र के सदृश पराक्रमी हो, मेरे समान पुत्र हो, मला उसे किस वस्तु की अभिलाषा हो सकती है? जिसके लिए वह कोई उपक्रम

1. भरतो वा भवेत् राजा वर्य वा ननु तत् समम् ।

यदि तेऽस्ति धनुः शलाघा त राजा परिपाल्यताम् ॥

ऊँ 1/20

2. वनगमननिवृत्तिः पार्थिवस्थेय ताव -

न्तम पितृपरवत्ता बालभावः त एव ।

नवमृषतिविमर्श नास्ति ऊँका प्रजाना -

मथ व न परिभोगेर्वन्विता मातरौ मे ॥

ऊँ - 1/14

3. महाकवि मातः : डा० मेमियन्ट्र शास्त्री, पृ० 219

करेगी ।¹ मातृवात्सल्यपूर्ण उनके ब्रह्म कितने मर्यादित तथा प्रभावशाली हैं -
 "भरत हठ मत करो । महाराज को अपने पुण्य से सिद्धि भोगने दो । तुमको मेरी
 ज्ञपथ, यदि तुम अपना राज्य न सँभालो ।"² राम पराक्रमी है, पराक्रम का
 प्रतीक स्वयं रावण करता है x x x ओह कैसा असीम पराक्रम, कैसी
 अनुपम बहादुरी, कैसा लोकोत्तर पीत्य और कैसी अद्भुत गति है । "राम" इस
 थोड़े से अक्षरों में जैसे सम्पूर्ण संसार समाहित है ।³

भरत

भरत के चरित्र में क्लृप्त नहीं लगा, राम की भाँति यह भी एक
 उदात्त चरित्र है । राम का वनवास, दशरथ का प्राणत्याग आदि घटनाएँ उनके
 मातृत्व-गृहवास के समय घटित होती हैं । दूत जाने पर वह अयोध्या अत्यन्त
 उत्कण्ठा से किसी शुभायोजन की आज्ञा से उतावले होकर आते हैं । नगर से बाहर
 ही प्रतिमागृह में दशरथ की प्रतिमा का दर्शन तथा प्रकारान्तर से पिता का न्यून
 तथा अन्य वृत्तान्त से वह अवगत होते हैं, उन्हें अयोध्या जाना दृष्ट प्रतीत होता
 है - "पिता तथा भाई से शून्य अयोध्या जंगल के सदृश है । वहाँ तो मेरा गमन
 उसी प्रकार है जैसे कोई पिपासातृ जलहीन शुष्क नदी की ओर दीड़कर जाता है ।"⁴

1. यस्याः श्रुतमो माता मया पुत्रवती य या ।

एते कस्मिन् स्पृहा तस्या येनाकार्यं करिष्यति ॥

ॐ 1/13

2. मेवं, नमः स्वस्त्यैरनुयातु सिद्धिं ।

मे मास्ति परिरेक्षति चेत्पराज्यम् ॥

ॐ 4/24

3. अहो बलमहो वीर्यमहो सत्त्वमहो जवः ।

राम इत्यखिरत्यैः स्थाने व्याप्तमिदं जगत् ॥

ॐ 5/14

4. अयोध्यात्वीभृता पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम् ।

पिपासातृऽनुयावामि क्षीणतोयां नदीमिव ॥

ॐ 3/10

वह माता कैकेयी को कोसती हैं जो उनकी मानसिक निर्वेकता है - "माता लोअलया एवं माता सुमित्रा के मध्य तुम गंगा-यमुना के मध्य कुन्दी के समान हों, प्रतीत हो रही हो ।"¹ गुस्सेन उन्हें राज्याभिषेक करना चाहते हैं, वह अस्वीकार कर कहती हैं - "अभिषेक । अभिषेक तो इन देवी जी को दीजिए । मैं वहीं जाऊँगा, जहाँ लक्ष्मण प्रिय राम हैं, उनके बिना अपीध्या नहीं रही । जहाँ राम हैं वहाँ अपीध्या है ।"² वन में वह राम से राज्याभिषेक के लिए अनुरोध करती हैं । राम के यह कहने पर "धर्म यही है, माता ने जिसे राज्य दिया वह भीगे ।" सुनकर भरत की दशा विचित्र हो उठती है । वह कहती हैं - "हे गुण्ड मेरा जन्म भी उसी कुल में है जिसकी शोभा आप हैं । मेरे भी पिता वही हैं जिनके दंडधर आप हैं । मैं के अपराध से पुत्र को अपराधी समझना क्या उचित है ? दुखी भरत की ओर दयादृष्टि से देखो ।"³ "प्रतिमा" में हमें एक तपःपूत, शीलनिधान व्यवितत्व के दर्शन होते हैं जो अर्जित प्रतिभा के सहज तेज से नहीं परयाताप के दुःख की ओँच से निवृत्त है । परयाताप तोड़ता भी है, जोड़ता भी है । जब वह तोड़ या जोड़ नहीं पाता तब व्यवितत्व को प्रबल संकल्पशक्ति पर आश्रित या आधारित कर देता है । ऐसी कल्याणकारी उद्भावनाओं से प्रेरित, तोड़-जोड़ से असम्पूक्त संकटापन्न स्थिति में

1. मम मातुश्च मातुश्च मध्यस्था त्वं न शीमते ।

गंगायमुनयोर्मध्ये कुन्दीव प्रवेक्षिता ॥

अंक 3/16

2. अभिषेकमिति । इहात्रभक्ष्ये प्रदीयताम् ।

x x x x x

तत्र यास्यामि यत्रासी वसति लक्ष्मणप्रियः ।

नायोध्या तं विनयोध्या सायोध्या यत्र राघवः ॥

- वही / 24

3. अपि तगुण । ममापि त्वत्प्रसूतिः प्रसूतिः

तं कुं निमृताधीमस्ति पिता मे पिता च ।

सुपुत्र्य पुत्र्याणां मातुदोषो न दोषो,

वरद । भरतमिति पश्य तावदप्याह ॥

अंक 4/20

हम भरत को बिलखते पाते हैं¹ -

स्पृशति तु यदि नीची मामर्थं भुङ्क्तेनन्द -

रत्नं य मवति सत्यं तन् देहो विनीच्यः ॥

अंक 3/9

सीता

यह एक आदर्श पतिपूजा के रूप में चित्रित है। सीता के चरित्र की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि वह परिस्थितियों के अनुकूल अपने को परिवर्तित कर लेती है। वह वन में पहुँचकर कुटी की व्यवस्था करती है और स्वच्छता एवं सफाई का भी पूरा ध्यान रखती है। सीता के इस कथन में कितना त्याग एवं संयम समाहित है यह अनुमान की वस्तु है - "आर्ये उपहारमुपन - आकीर्णः सम्मार्जित आश्रमः । आश्रमप विभवेनानुष्ठितो देवसमुदाचारः । तद् यावदाध्यात्मो नागच्छति । तावदिमान् बालपुत्रान्दक प्रदानेनानुकोञ्जयिष्यामि ।"² सीता एक पतिपरायण तथा पति की सहधर्मिणी है। राम के साथ वन-निवास को वह अहोभाग्य कहती है।³ वह विवेकशील एवं वात्सल्यभाक्ता है। वह आश्रम के धर्मों एवं कर्तव्यों का तत्परता से पालन करती है।⁴ उनके इस कार्य-व्यापार को देखकर राम का कथन कितना सत्य है - सीता का जो हाथ दर्पण उठाने में व्यक्त करता था, वह अब घड़ा उठाने में नहीं व्यक्त।⁵ प्रतिमा में सीता का

1. प्रतिमानाटकम् : जगदीशचन्द्र मिश्र, वीरभद्रा सुरभारती, प्रकाशन, वाराणसी, पृ० 34 - भूमिका

2. महाकवि भास : डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, पृ० 266

3. ननु सहधर्मचारिणी बल्वहम् ।

x x x x
आतो न बल्वन्गच्छामि ।

x x x x
तत् त्वं मे प्रसादः । अंक - 1

4. अंक - 5

5. योऽस्याः करः श्राम्यति दर्पणस्य

तः भेति त्वं कलशं वहन्त्याः ।

कष्टं वनं स्वीजन्तीकुमार्यै,

समं क्तामिः कठिनीकरोति ॥

अंक - 5/3

चरित्र सर्वथा उदात्त तथा उज्ज्वल है ।

कैकेयी

रामायणीय कथा की हस्तभार्या, कृतिसत्ता कैकेयी "प्रतिमा" में प्रोज्ज्वल-चरित्रा है । वह भरत के उपालम्भ देने पर कहती है - "पुत्र तुम महाराज के शाप की बात नहीं जानते ।" भरत के पुनः पुछने पर समन्त्र तारा वृत्तान्त बताते हैं । तब कैकेयी पुनः कहती है - पुत्र इसीलिए अपने को अपराधिनी बनाकर मैंने पुत्र राम को बन भेजा, राज्यलोभ से नहीं । अवश्यम्भावी महिषासुर पुत्र विभीषण के बिना चरितार्थ कैसे होता ? x x x x में ती बड़े बीस दिन ही रहने वाली थी किन्तु मानसिक असन्तुलनवश बीस वर्ष में से कह उठी ।¹ इस प्रकार भास ने कैकेयी का दोष परिमाजित कर दिया है ।

अन्य पात्रों में समन्त्र महाराज दशरथ का परम विश्वस्त हितसाधक व उनके सुख दुःख का सहभागी सौम्य प्रकृति का पुरुष है । वे सम्पूर्ण कुल के विश्वास-भाजन हैं । राम, लक्ष्मण व सीता के अनुगामी - और आश्रयात्मक हैं । राम के लिए वनवास के आदेश पर वह उद्धत दृष्टिगता होती है किन्तु राम द्वारा ज्ञान्त कर दिये जाते हैं । मृगधन - सखि कीर्तन्या आदि की उपस्थिति मात्र नाटक में दिखायी गयी है । नाटक के सभी पात्र उज्ज्वल चरित्र वाले हैं ।

इस प्रकार भास ने अपने उद्देश्य - आदर्श की अभिव्यक्ति अपनी इस कृति में की है । ऐसी दृष्टि में उद्देश्यों की से नाटककार भास सफल हैं ।

1. जात । एतान्निमित्तमपराधे मां निक्षिप्य पुत्रको रामो वनं प्रेषितः ।

न कस्य राज्यलोभिन । अपरिहरणीया महिषिजापः पुत्र प्रवर्तते विना न भवति । x x x x यतुर्दशदिक्ता
इति वषट्कामया पर्याकुलहृदयया यतुर्दशवर्षाणीत्युक्तम् ।

चतुर्थ अध्याय

अभिषेक : एक आलोचनात्मक अध्ययन

चतुर्थ अध्याय

यह रामायण कथाश्रित भास का दूसरा नाटक है। उच्चकोटि का न होते हुए भी शास्त्रीय लक्ष्यों के निकष पर खरा है। इस नाटक में सभी सन्धियों, अवस्थाएँ तथा अर्थ प्रकृतियाँ अपने कार्य व्यापार एवं प्रकृति से संगमित होकर नाटक-फल राज्याभिषेक को परिणति प्रदान करती है। इसमें राम तथा सुग्रीव दोनों के राज्याभिषेक की कथा संग्रहित है। राम प्रख्यात इक्ष्वाकुवंशीय होने के कारण उत्तमकुलोद्भूत धीरोदात्त नायक है। अङ्ग-गीरत वीर एवं वृत्ति सात्त्विकी है।¹ सन्धियों तथा अवस्थाओं के अनुस्य नाटक की कथावस्तु का विश्लेषण निम्न प्रकार से है -

मुठ सन्धि

"आरम्भ" अवस्था तथा "बीज" अर्थप्रकृति से संगमित मुठ-सन्धि के अन्तर्गत प्रथमार्क का समग्र कथानक समाविष्ट है। आरम्भावस्था एवं नाटक-फल रूप अर्थप्रकृति "बीज" का अंकुरण सूत्रधार के कथन से प्रारम्भ होता है - सीताहरण के कारण संतप्त रघुवंशवर्तस लोकप्रिय भगवान राम तथा स्त्री-हरण पूर्वक देश-निष्कासित सभी वानरों के अधीश्वर सुग्रीव के मध्य पारस्परिक कल्याण-विषयक प्रतिज्ञा हो गयी है, तदनुसार स्वर्णमाला धारण करने वाले वालि के वध का प्रयत्न हो रहा है, इसीलिए यह राम - लक्ष्मण राज्यभ्रष्ट सुग्रीव को पुनः राज्य दिलाने आये हैं जैसे राज्यच्युत हन्द्र को पुनः राज्य स्थापित करने के लिए विष्णु और शिव उपस्थित हुए हों।²

1. महाकवि भास : डा० नैमिचन्द्र शास्त्री, पृष्ठ - 141

माथे । किं नावगच्छति । एष खलु सीतापहरणजनितसन्तापस्य रघुकुलप्रदीपस्य सर्वलोकनयनाभिरामस्य रामस्य च दाराभिर्मर्जननिविधयीकृतस्य सर्वहर्षहराजस्य सुविमुलमहाश्रीवस्य सुग्रीवस्य च परत्परोपकारकृतप्रतिज्ञयोः सर्ववानराधिपतिं हेममालिनं वालिनं हन्तुं समुद्योगः प्रवर्तते । तत स्त्री हि -

इदानीं राज्यविभ्रष्टं सुग्रीवं रामलक्ष्मणौ ।

पुनः स्थापयितुं प्राप्तविन्द्रं हरिहराविव ॥

अंक 1/3

यहाँ राम के राज्याभिषेक का भी संकेत स्व नाटक -पलायन परिलक्षित हो उठता है । क्योंकि राम का अभिषेक हनुमत् के समान पूर्व होने की बात अन्त में उल्लिखित¹ है । "बीज" स्व अंशुकृति "प्रारम्भ" अवस्था को प्राप्त हो, राम द्वारा राज्यपुत्र सुग्रीव को पुनः उसका राज्य प्राप्त कराने का प्रयास², विकसित होकर "प्रयत्न" की ओर बढ़ता हुआ "बिन्दु" अंशुकृति का अंकुरित करता है ।

प्रतिमुञ्ज-सन्धि

द्वितीयार्क का पुरा कथानक "प्रयत्नावस्था" तथा "बिन्दु" अंशुकृति से संगमित प्रतिमुञ्ज-सन्धि का निर्वाह करता है । "प्रयत्न" नामक अवस्था का अंकुरण सुग्रीव द्वारा राज्यावाप्ति के बाद सीतान्वेषणाथ वानरदल को विभिन्न दिशाओं में प्रेषित कर देने की ककुम तथा बिलम्ब के परस्पर वार्तालाप द्वारा अधिगत सुचना से प्राप्त होता³ है । वालि-वध की घटना "बिन्दु" अंशुकृति की प्रकृतिसूचक करती है । यहीं से "प्रयत्न" प्रारम्भ हो जाता है । हनुमान लंका जाने का उपक्रम करते⁴ हैं । समस्त द्वितीयार्क प्रतिमुञ्ज - सन्धि में समाप्त

1. अंक 6/33

2. मत्तायका निम्नहत्तभिन्नविक्लीर्णद्विहं

ब्रह्म ब्रह्म तवाद्य सहसा भुवि पातयामि ।

राजन् । भयं त्यज ममापि समीपवर्ती

दुष्टदृष्टव्या च तमरे निहतः स वाली ॥- अंक 1/4

लक्ष्मणः - आर्य । सीपस्नेहतया वनान्तरस्याभितः उलु किङ्किण्यया भवितव्यम् । - वही

3. ककुमः - निषिद्धतप्रापत्वात् कार्यवाहारव्यापृताः सर्वे वानरपुण्याः ।

बिलम्बः - x x x आर्यरामस्य कृतोपकारप्रत्युत्पन्नारनिमित्तं सर्वास्तु दिशास्तु सीताविधयने प्रेषिताः सर्वे वानरा आगताः ।

x x x x x

4. ककुमः - किं न जानीषे निषिद्धतमर्थं कार्यस्य । वृक्ता -

तद्वधवा वृत्तान्तं रामपत्नया वगेन्द्राद्

आरुह्यागेन्द्र तद्विनीन्द्रं महेन्द्रम् ।

लंकामध्येतुं वायुपुत्रेण शीघ्रं

वीर्यप्राप्तव्यात्सन्धिः सागरी च ॥

अंक 2/1

होता है ।

गमे - सन्धि

गमे - सन्धि फलावाप्ति-निमित्त "प्रारम्भ" उद्योग की अधिकारितः पूर्ति का संकेत करती है । इसी लिए इसमें "प्राप्तयाज्ञा" अवस्था एवं "पताका" अर्धप्रकृति का सहयोग रहता है । सीता की खोज के लिए हनुमान लंका चले जाते हैं, सीता के सामने उपस्थित होकर राम का सन्देश¹ एवं सुग्रीव से सम्बन्ध पारस्परिक साहाय्य-निमित्त भैरी का² कथन करते हैं । इस प्रकार द्वितीयार्क में अंकुरित बीज रूप "बिन्दु" जिसकी प्राप्ति का प्रयत्न "प्राप्तयाज्ञा" अवस्था की प्राप्ति हुआ पुनः लीप होने लगा, यह स्थिति हनुमान के प्रत्यावर्तित होने तक चली रहती है । तृतीयार्क गमे-सन्धि का पोषक है ।

विभीष-सन्धि

इस सन्धि का प्रारम्भ अर्धप्रकृति "पताका" सुग्रीव द्वारा सीतान्वेषण हेतु वानरदल प्रेषण हनुमान के लंका प्रत्यागमोपरान्त वहाँ विविध यत्नों एवं तृतीयार्क में ही विभीषण द्वारा³ रावण को सीता - वापस करने की सलाह रूप "प्रहरी" अर्धप्रकृति से हो जाता है । और फिर हनुमान द्वारा आकर राम को रावण पर

1. अनञ्जनपरितप्तं पाण्डु स क्षामवक्त्रं

तव वरगुणचिन्तावीतलावण्यलीलम् ।

वहति विगतधीर्हीयमानं हरार

मनसिज्वरदग्धं बाष्पपर्याकुलाक्षम् ॥

- अंक 2/21

2. हृत्वा वा तिन्यमाहो जनिष्यं त्वत्कारणादग्रे

सुग्रीवस्य कूर्तं नरेन्द्रतनयं, राज्यं हरीणां ततः ।

राज्ञा त्वद्विधाय वापि हरयः सर्वा दिशः प्रेषिता -

स्तेषामस्मयहमद्य गुणवचनात् त्वां देवि, सम्प्राप्तवान् ॥

- वही / 22

3. विभीषणः सर्वथा राक्षसकुलस्य विनाशोऽभ्यागत इति मन्ये ।

x x x मनु सीतापहरणमेव । x x x प्रसीद राजन्, वधने

हितं मे प्रदीयतां राघव पत्नी ।

- अंक 3

आक्रमण करने के लिए उत्साहित करने का कार्य प्राप्तयाज्ञा को "नियताप्ति" अवस्था की ओर अभिमुख करता है। विचिच्छिन्न हो रही कथा वस्तुतः हनुमान के प्रत्यावर्तन तथा लंका पर आक्रमण-परामर्श द्वारा पुनः अविच्छिन्न होती है। इस सन्धि की संस्थिति अति न्यून है। यदि रावण - विभीषण संवाद एवं वानरसेना समेत समुद्र - तट पर राम की अवस्थिति को भी निर्वहण सन्धि में अथवा रावण विभीषण कथा को गर्भ-सन्धि में समाधीकृत मान लिया जाय तो असंगत न होगा।

निर्वहण सन्धि

वानरसेना - सनाय राम का समुद्र-तट¹ पर अवस्थित हो जाना अर्धप्रकृति "कार्य" का फल संसृजित करने लगता है एवं फलागम अवस्था स्पष्टतः संलक्षित हो उठती है। यही अन्तिम निर्वहण-सन्धि की संस्थिति परिलक्षित हो जाती है जो नाटकान्त तक अविच्छिन्न रूप से चलती है। यशुशर्क की विभीषण वरणागति, इन्द्रजित का वध², रावण का सीता-वध से विरत किया जाना³, राम के निमित्त इन्द्र - सारथि गतलि द्वारा दिय - रथ की उपस्थिति राम-रावण

1. आक्रान्ताः पुष्टसानुर्जगहना मेघीपमाः पर्वताः

सिंहस्थाप्रगजिन्द्रपीतसत्तिता नक्षत्र तीर्णा मया ।

क्रान्तं पुष्पफलादय पादपयुतं चिरं महत् काननं

सम्प्राप्तीऽस्मि कपीन्द्रसैन्यसहितो धेलातटं साम्प्रतम् ॥

अंक 4/2

2. राक्षसः - ओतुर्महति महाराजः । तेन वतु -

उदीर्णसत्त्वैर्न महाबलेन लंकेश्वर त्वामभिमुखीकृतम् ।

सत्त्वमेषमाद्य हि राक्षसेन प्रसह्य युद्धे निहतः सुतस्ते ॥

- अंक 5/11

3. रावणः - अस्याः कारणेन बहवो भ्रातरः सुताः सहृदय

मे निहताः । तस्मादग्निविषयमस्या हृदयं मित्वा - - - ।

राक्षसः - प्रसीदतु महाराजः । x x x x

स्त्रीवधी न कर्तव्यः ।

- वही

का युद्ध¹, रावण-वध², विभीषण का राज्याधिकारी बनना आदि घटनाएँ नाटक-फल की अवधि में संकेतित करती हुई मुखादि सभी सन्धिओं को समाहित कर राम के राज्याभिषेक³ रूप फल उपस्थित करती है। इस चतुर्थ-सन्धि के अन्तर्गत तक निर्वहण सन्धि है। भरतवाक्य उसकी अन्तिम वृत्ति है।⁴

नाटक-शास्त्रीय निरुपण पर सर्वाङ्ग-गुण ही नाटकीय नाटक के सफल या असफल होने की पर्याप्त नहीं कहा जा सकता जब तक कि उसमें कविकर्म के निर्वहण का परीक्षण न कर लिया जाय। कवि-कर्म के निरुपण की दृष्टि से उसकी नाटकीयता में भाव-संवेद्यता और उसके उपजीव्य रस-अङ्कारों का समाधीजन

1. रावणः - तेन हि स्थन्दमानय ।

x x x x

स्मात्पुत्रं तुरेय सीते । द्रुपदसि राघवम् ।

मम वापटपुत्रीस्तीक्ष्णधिरा, नान्तयेतम् ॥

अंक 5/17

x x x x

प्रथमः - आ युष्माकामान्यजन्तुः न मन्त्रेण प्रेषितो मातुः ।

x x x x

अपरिपीतलीपुत्रं नगरैर्गृहीतं समीक्ष्य युद्धम् ।

विरतविविधभक्षणपातमैतं हरिवर राक्षस शक्तिः स्त्रियाश्च ॥

अंक 6/13

2. राघवं निहतं दृष्ट्वा पुष्पवृष्टिर्विपातिता ।

एता नदन्ति गम्भीरं भयं त्रिदिवसयनाम् ॥

अंक 6/18

3. यमवस्त्रकुक्षेरवातवाधे त्रिदशगणैरभितृप्ता विपाति ।

दशरथक्यनात् कृता भिक्षा त्रिदशपतिर्यमवाप्य वृत्रेणः ॥

अंक 7/3

4. मयन्तवरजतो गावः परचक्रं प्रशाम्यतु ।

हमामपि महीं हृत्तमं राजतिष्ठः प्रशस्तु नः ॥

वही / 35

आवश्यक है । "अभिषेक" में यह तत्त्व समुचित रीति एवं मात्रा में उपलब्ध है ।

रत्न योजना

यह नाटक वीररत्न - प्रधान है । वालि-वध, लंका में हनुमान के जीर्णपूर्ण कार्य-कलाप, राम-रावण-युद्ध आदि वीररत्नात्मक सन्दर्भ हैं ।

वीर-रत्न

रूपक का प्रारम्भ ही वीररत्न से होता है । तारा सुग्रीव-हृन्द-निमित्त जाते जब वालि को रोकती है तो वह अपना पराक्रम कहता है -

तारे । मया खलु पुरामृतमन्यनेऽपि

गत्वा प्रहस्य सुरदानवदैत्यसंघान् ।

उत्फुल्लनेत्रमुरगेन्द्रमुदङ्गम् -

माकूष्यमाणवलोचय सुविस्मितास्ते ॥

x x x x x

हन्द्रो वा शरणं तेऽस्तु प्रभुर्वा मधुसूदनः ।

मच्चक्षुष्यमासाद्य तजीवो नैव यास्यति ॥

अंक 1/11-12

"हे तारा । प्राचीन-काल में समुद्र-मन्थन के समय पर भी देवता, राक्षस तथा दैत्यगणों पर हैसकर मेरे द्वारा खींचे जाते हुए श्वनाग को देखकर - जिसकी आँखें फटी-सी हो रही थीं और घेहरा उत्तेजित हो उठा था - वे सब बहुत घबराए हुए थे ।"

"सुग्रीव । रक्त, तुम्हारे रक्त वाहे हन्द्र हो अथवा स्वयं भगवान् विष्णु, मेरे आँखों के सामने आया हुआ तु जीता नहीं जायेगा ।" इन छन्दों में वालि का दर्प-कथन वीररत्न का व्यंजक है ।

वीररत्न की सांगोपांग अभिव्यक्ति अंक छह के राम-रावण के युद्ध प्रसंग में अत्यन्त उत्कृष्ट हुई है । वहाँ स्थायी-भाव उत्साह, अपनी सहयोगी आलम्बन, उद्दीपन, संघारीभावों के सहित प्रकट हुआ है । राम और रावण दोनों परस्पर आलम्बन शस्त्रास्त्रों का परिचालन आदि उद्दीपन, आरक्तानन, बाहुओं का फट्फटना अनुभाव एवं रोष, रोमांच आदि संघारीभाव स्पष्ट हो

रहे हैं -

स्थानाङ्गमणवामनीकृत तनुः किञ्चित् स्माशवात्य वै
तीव्रं बाणमवेक्ष्य रक्तनयनो मध्याह्नसूर्यप्रभः ।
व्यक्तं मातलिना स्वयं नरपतिर्दत्तास्पदो वीर्यवान्
दृष्टः संहितवान् वरास्त्रममिहं पितामहं पार्थिवः ॥

x x x x x

रघुवरभुजवेगविप्रविमुक्तं

ज्वलनदिवाकरयुक्त तीक्ष्णधारम् ।

रजनिचरं निहत्य संशये

पुनरभिगच्छति राममेव शीघ्रम् ॥

अंक 6/16-17

हिमालय शिखर से अवतरित विद्याधर राम-रावण में लगे रहे समर के सम्बन्ध में वार्तालाप कर रहे हैं - दृढ़ स्थिति से आक्रमण में शरीर को वामन [कुटु, बीना] बनाये, कुछ सोंस रोककर क्षणभर स्थिर हो, [रावण का] तीक्ष्ण बाण देखकर रक्ताभ मेघ बाण के प्रति दृष्टि उठा मध्यकालीन सूर्य-सदृश राम ने सारथि मातलि द्वारा स्थान दिये जाने पर रोषाभिभूत होकर पितामह सम्बन्धी शीघ्र जर धनुषारोपित किया । x x x x राम के बाहुवेग से प्रेरित होकर अग्नि तूर्य से युक्त तीक्ष्ण धार वाले अस्त्र युद्ध में रावण का वध कर वह पुनः शीघ्रगति से राम के पास वापस आ रहा है ।" इन दोनों छन्दों में वीररस की सुबहु अभिव्यक्ति है । वीररस की अभिव्यंजना वाले अन्य स्थलों की अपेक्षा

1. शरपरिपीततीव्रबाणं नरनेत्रयुतयोः समीक्ष्य युद्धम् ।

विरतविविधशस्त्रपातमेते हरिवरराक्षसैनिकाः स्थिताश्च ॥

अंक 6/13

x x x x x

तृतीय : - रावणमपि पश्येतां भवन्ती ।

शैमीवेगैर्हयान् मर्दयित्वा ध्वजं चापि शीघ्रं बलेन निहत्य ।

महद् धाजवर्णं सृजन्तं नदन्तं हसन्तं नृदेवं क्षुभं भीषयन्तम् ॥

-पृष्ठी / 15



F4188 DS.2084

तृतीयक का हनुमान के पराक्रमाभिभूत व्यापारों में उल्लिखित है - "हनुमान की वीरता और युद्ध-प्रवीणता का सजीव चित्रण किया गया है । x x x इस स्थल पर हनुमान के साहसिक कार्यों का चित्रण आत्ममग्न के रूप में किया है । उनकी घेबटारें, ललकार , युद्ध करने की प्रक्रिया उद्दीपन है । कुमार अश्व की आँखों का लाल-लाल होना , अंगों का संयातन, सेना का प्रेरित करना , वेग पूर्वक रथ-संयातन आदि अनुभाव हैं । x x x विभाव, अनुभाव आदि से परिपुष्ट होकर उत्साह स्थायीभाव की व्यंजना होने से वीररस का परिणाम हुआ है ।" **शुक्ल का वर्णन² रत -**

शोधात् सैरवतमेव त्वरिततरह्यं स्पन्दनं वाहयन्

प्रावृत्कालाभ्रस्य परमलघुतरं बाणजालान् यमन्तम् ।

तान् बाणान् निर्विधुन्धन् कपिरपि सहसा तद्रथं लघ्वितया

कण्ठे संगृह्यपुष्टं मुदिततरमुखी मुष्टिना स्निग्धम् ॥

श्लोक 3/7

शुक्ल अश्वकुमार - हनुमान के युद्ध का कथन रावण के समक्ष कर रहा है - " कुमार की अश्व शोधादेश में लाल हो गयी , रथ को तीव्रवेग से चलाया , जैसे सर्पकालीन मेघ घुमिटे करते हैं , कुमार ने बाणों की वर्षा प्रारम्भ कर दी । कुमार ने बाणों को काटकर तथा उनके रथ पर सहसा आक्रमण करके बाणर ने कुमार को दशा दिया तथा प्रसन्न मुद्रा में उसने कुमार को मुष्टि-प्रहार करते भाग गिराया ।" **सायक वाहन की मुष्टि है ।**

वीररस के अन्तर्गत दो नाटक में रौद्र , भयानक , उत्पन्न तथा रस भी अंगितवस्तु हुए हैं -

1. महाकवि भासः हा नैमिषेन्द्र शास्त्री पृष्ठ 369

2. शुक्ल : - x x महाबलः क्षुब्धः क्षुब्धः । तेन क्षुब्धः

मुणालवदुत्पादिताः सारवृक्षाः , सुन्दर भग्नी दास्यताः ,

पाणितालाभ्यामभिमुदितानि लतागुल्फाणि , नादेभ्यः विस्फुरिताः

प्रमदवन्पाताः । तस्य गृहणसमये क्षलमाहापयिर्मुहति महाराजः ।

रौद्र रस

तन्दष्टोष्ठशयणहर्षरक्तनेत्रो मुष्टिं कृत्वा गात्रमुत्तदंष्ट्रः ।
गर्जन् भीमं वानरो माति युद्धे संवत्सर्गिनः तन्निष्कृत्यथ ॥

अंक 1/13

“यह वानर [वालि] आठें बसा रहा है, क्रोध में आँखें लाल किए, दाढ़ उपर किये झकड़ के साथ गरजन करता हुआ युद्ध में [जगत् को] भस्म कर देने वाली प्रलय की अग्नि की तरह धमक रहा है।” क्रोध स्थायी-भाव की अभिव्यक्ति के कारण रौद्ररस है।

कल्प रस

“अभिषेक” में दो स्थलों पर कल्प रस की सुष्ठु अभिव्यंजना प्राप्त होती है, एक वालि-वध के अवसर पर एवं दूसरा हन्द्रजित के निधनोपरान्त। पुत्र के मरण का समाचार सुनकर रावण शोक-विह्वल हो उठता है -

हा वत्स । सर्वजगतां ज्वरकूर्त । कृतात्म्य ।

हा वत्स । वासवजिदान्तघेरिचक्र ।

हा वत्स । वीर गुत्सवत्सल युग्रीण्ड ।

हा वत्स । मामिह विहाय गतोऽसि कस्मान् ॥

अंक 5/13

हाय पुत्र, जगत् को तन्नाश करने वाले । ... स्थलों में निपुण, हन्द्र को पराजित करने वाले, शत्रुओं का संहार करने वाले, हाय वीर, गुत्सवत्सल, युग कृष्ण, हाय पुत्र तुम सुझलौ छोड़ हमारे रहों गये गये । रावण का शोक स्थायी भाव, हन्द्रजित, निधन रूप आलम्बन से उद्दीप्त हो रहा है । ... है । इसी प्रकार वालि के निधन पर अंगद के विलाप में कल्प रस की अभिव्यंजना हो रही है -

अतिबलतुष्टयायी पूर्वमासीहरीन्द्रः

क्षितितलपरिवर्ती क्षीणस्तवर्गिणेष्टः ।

अतरपरिवर्ती व्यक्तमुत्तुज्य देहं

किममिलषति वीर स्वर्गमहाभिगन्तुम् ॥

अंक 1/25

"आप अत्यन्त बलपूर्वक शयन करने वाले हरि राज थे, किन्तु अब आपके अंग घेष्टाविहीन हो गये हैं, आप धरती पर निश्चेष्ट पड़े हुए हैं। हे वीर, श्रेष्ठ बाणों द्वारा बिधे हुए शरीर को छोड़कर स्वर्ग जाने के आकांक्षी हैं।" अंगद का यह कथन विधादपूर्ण होने के कारण कल्प रस की सृष्टि हो रही है। इन्द्रजित् तथा बालि के निधन पर क्रमशः रावण एवं अंगद के शोक सन्नाप्त हृदय के उद्गारों से कल्प-रसाप्लावित स्थल और भी है।

इस नाटक में भयानक, अद्भुत तथा शान्तरस भी अभिव्यक्त हुए हैं। भयानक रस की सृष्टि समुद्रतरण के अवसर पर, अद्भुत वस्तु एवं अग्निदेव के प्रकटन पर तथा शान्त रस सीता की अग्नि-बुद्धि के समय दिखायी पड़ता है -

ववचिद् फेनोदगारी ववचिदपि च मीनाकुलजलः

ववचिच्छंढाकीर्णः ववचिदपि च नीताम्बुदन्निभः ।

ववचिद् वीचीमालः ववचिदपि च नृप्रतिभयः

ववचिद् भीमावर्त ववचिदपि च निष्कम्पसलिलः ॥

अंक 4/17

राम का कथन है - सागर कितना विचित्र मालूम हो रहा है ? कहीं फेन निकल रहा है, कहीं मत्स्य समुदाय जल में मन्थन कर रहा है कहीं शंख-समूह उभरता दिखायी पड़ता है और कहीं यह काले मेघ की तरह है, कहीं तरंगों की पंक्ति चल रही है और कहीं भयानक नृ पलटा आ रहा है, कहीं भीषण भैंसों वाला और कहीं शान्त जल वाला बना हुआ है। समुद्र के इस रूप से भयावह - भाव उद्भासित हो रहा है। इसी प्रकार अद्भुत भाव समेटे हुए निम्नोक्ति छन्द -

1. देवाः सेन्द्रा जिता येन दैत्याश्चापि पराङ्मुखाः ।

इन्द्रजित् सोऽपि समरे मानुषेण निहन्यते ॥

अंक 5/12

x x x x

हृदानीमपि निःस्नेहो वत्सेनेन्द्रजिता विना ।

कष्टं कठोरहृदयो जीवत्येव दशाननः ॥

- वही / 14

मणिविरचितमौलिग्यासाप्रायताक्षी

नवकुसुमयनलो मत्तमार्तगलातः ।

सलिलनिचयमध्यादुतिगस्तलेष श्रीपु -

मवन्तमिव कुर्वन्तेजया जीवलीकृम् ॥

अंक 4/15

लक्ष्मण का कथन - मणि - विन्ध्यास से सुन्दर मस्तक, विराम र त्रि-
नेत्र, श्याम अंग, मत्तगज की सी गति अभी-अभी सागर-जल से निस्त
समस्त सैतार को अपने समक्ष अवन्त कर रहा {यह कौन है ?} विरमय स्थायीभाव
का यहाँ स्पष्ट आभास हो रहा है । इसी प्रकार विभीषण के कथन - समुद्र दो
भागों में विभक्त-सा हो गया है {साम्प्रत विधास्य इव दृश्यते जलनिधिः} ।
शान्त रस -

हर्मा गृह्णीष्व राजेन्द्र । सर्वलोकनमस्कृतम् ।

अपायामक्षतां शुभां जानकीं पुरुषोत्तम । ॥

अंक 6/27

अग्नि राम को सम्बोधित कर रहे हैं - हे पुरुषोत्तम, हे राजेन्द्र
सर्वलोकविन्दता, पापरहित, अक्षता एवं शुद्ध अपनी इस सीता को ग्रहण की जिस ।
इस अतिरिक्त आगे के दो छन्दों में भी शान्त रस की अभिव्यञ्जना है -

हर्मा भगवतीं लक्ष्मीं जानीहि जनकात्मजाम् ।

सा भवन्तमनुप्राप्ता मानुषीं तनुमादिशता ॥

जानतापि य वेदेह्याः श्रुतिं धूमकेतन ।

प्रत्ययायै हि लोकानामेवमेव मया कृतम् ॥

अंक 6/28-29

अभिषेक में अंगीकृत वीररस का सम्यक् परिपाक नाटक की वीररस प्रधान होने की
प्रतिष्ठा प्रदान करता है ।

पात्रों की शील-वास्ता

अभिषेक में अठारह पुरुष तथा मात्र दो स्त्री पात्र हैं । पात्रों का बाहुल्य तो भास के नाटकों की पहचान है । इतना अवश्य है कि भले ही पात्र बहुसंख्यक हों परन्तु उनके कार्य-व्यापार और गति को कवि ने बड़ी पटुता से नियन्त्रित किया है । किसी भी पात्र की न तो उपस्थिति और न उसके कथोपकथन कहीं अनावश्यक प्रतीत हो पाते हैं । हम नाटक के प्रमुख पात्रों का चारित्रिक विश्लेषण प्रस्तुत कर रहे हैं -

राम

इषि समुद्राम को सन्तप्त करने वाले, उनके पाण्डित्य कार्यानुष्ठानों में व्यवधान उपस्थित करने वाले राक्षसों के हतकरूप में यह रूपक राम को प्रतिस्थापित करता है । राम इस नाटक में वीरवान् योद्धा हैं - वह अपने एक ही बाण द्वारा सप्त बालिवृक्षों¹ को वेध देते हैं । वह अपने पराक्रमी आत्मविश्वास से सुग्रीव तथा हनुमान को पूर्णतः आश्वस्त करते हैं कि बालि का वध होगा एवं एक ही शरसन्धान द्वारा बालि को धराशायी कर देते हैं ।² उनका अं प्रतिम शक्तिपुञ्ज शर का एक ही सन्धान अथाह जल-सागर को³ सुखाने एवं त्रैलोक्य जयी दशानन

1. सुवतो देव । तवाद्य बालिवृक्षं भेत्तु नमै संशयः

सालान् सप्त महावने हिमगिरेः शृंगोपमाच्छ्रीधर । ।

अंक 1/5

2. रुधिरकलितगात्रः सुस्तसंरबतनेत्रः

कठिनविपुलबाहुः काललोकं विविधुः ।

अभियतति कथंचिद् धीरमाकर्षमाणः

शरवरपरिवीतं शान्तवेगं शरीरम् ॥

अंक 1/16

3. मम शरपरिदग्धतोयपंकं हतशतमत्स्यविकीर्णभूमिभागम् ।

यदि मम न ददति मार्गमेनं प्रतिहतवी चिबं करोमि शीघ्रम् ॥

अंक - 4/12

का वध¹ कर सकता है ।

अन्तिमार्क में उपस्थित अग्निदेव, विष्णुधरादि और यतुर्थाक में वसुदेव² के कथन राम को सृष्टिकर्ता, पालक एवं विसृष्टिकारक साक्षात् विष्णु अवतार बताते हैं । अतः नाटक के राम का लक्ष्य धर्म संस्थापना तथा लोकोपदेश करना है । उनकी प्रकृति अभया, दृढसंकल्पा और मर्यादा संगमिता है । उनकी निर्भीकता की तो प्रतिमूर्ति है । विभीषण - आगमन पर सुग्रीवके आका करने पर भी उसे सादर आश्रय देते हैं ॥ अंक - 4 ॥ । यही नहीं रावण के गुप्तचर कुसाराण को कपित्थन्य द्वारा बन्दी होने पर मुक्त करने का न केवल आदेश देते हैं बल्कि समस्त सेना का ज्ञान करने के लिए उन्हें शिविर में प्रवेश दे देते हैं ।

राम एक लोकपावन-चरित्र की प्रतिस्थापना के उद्देश्य से प्रारम्भ अपने कार्य-व्यापार को अन्तिमार्क में पूरे कपि-समूह तथा विभीषण-सहित अन्य लंका निवासियों के समक्ष सीता-शुद्धि का उपक्रम करते हैं । अन्त में अग्नि आदि देवों के अनुरोध पर सीता को स्वीकारते हैं । वह कहते हैं मैं सीता की पवित्रता को जानता हूँ, लोक के विश्वासाथे ही मैंने ऐसा किया -

जान्तापि य धैर्य्याः शुचितां धूमकेतन । ।

प्रत्यायायै हि लोकानामेवमेव मया कृतम् ॥

अंक - 6/29

लक्ष्मण

रामपक्षीय अन्य पात्रों में लक्ष्मण का चारित्रिक प्रस्फुटन हुआ ही नहीं । वह मात्र राम के आज्ञापालक चित्रित किये गये हैं । सीता - परीक्षण के

1. रावणं निहतं दृष्ट्वा पुष्पवृष्टिर्निपातिता ।

एता नदन्ति गम्भीरं भयस्त्रिदिवसयनाम् ॥

अंक - 6/12

2. मानुषं रूपमात्थाय यजुर्गर्गिगदाधरः ।

स्वयं कारणभूतः सन् कार्याधी समुपागतः ॥

अंक 4/14

अवसर पर वह असहमत होते हुए भी आदिमानुसार उपक्रम करते हैं, उनका कथन 'मेरा तोयना व्यर्थ है'। अथवा हम तो आर्य राम की आकांक्षा के अनुकर्ता हैं।

हनुमान

हनुमान पूरे रूप में एक अपरिमित-साहसी, स्वाभिमानी, पराक्रमशील योद्धा के रूप में चित्रित किये गये हैं। सुग्रीव-राम के भेरी कराने एवं वाल्मीकि-वध के लिए प्रेरणाभूमि बनी है। राम-काय सीतानन्देक्षणार्थ समुद्रोत्खनन कर लंका जाना, अपना अस्तित्व स्थापित करने की दृष्टि से उपवन को ध्वस्त किया तथा राक्षसों का वध करके सीता का सन्देश लेकर वापस आते हैं। यह उनकी निभीकता के साक्ष्य हैं। हनुमान एक उदार-चरित्र पात्र हैं। प्रारम्भ से अन्त तक सुग्रीव तथा राम के हितार्थ वे समर्पित रहे हैं। विभीषण के प्रति जब राम सुग्रीवादि के तर्क पर तर्क होते हैं तो वह उनकी रीति का पूरी दृढ़ता-सहित निराकरण करते हैं - "देव, विभीषण मेरे ही समान आपका भवत है।"²

सुग्रीव

यह वैसा पात्र है जो कथानक से अलक्षित नहीं होता। वाल्मीकि के पश्चात्, विक्रान्ता का राज्य पाता है। राम के प्रति कुतूहल है। वह सीता की खोज के लिए पूरा वानर-दल प्रेरित करता है। वह राजनीति में भी पटु है। विभीषण के प्रति उसकी उदात्त राजनीतिक दृष्टि से सर्व मित्र-मातृ की दृष्टि से सर्वथा उचित है। उसका कथन है - "देव राक्षस मायावी होते हैं। कल-युद्ध-परायण हुआ करते हैं, विचार करने के पश्चात् ही विभीषण का³ प्रवेश उचित

1. निष्कलो मम तर्कः । अथवा वयमार्यस्यामिप्रायमनुवर्तितारः ।

ऊँ - 6

2. देवे यथा धर्मं भक्तास्तथा मन्ये विभीषणम् ।

भ्रात्रा विद्यमानोऽपि दुष्टः पूर्व पुरे मया ॥

ऊँ - 4/10

3. देव, बहुमायाशूलयोधिनश्च राक्षसाः । तस्मात् सम्प्रधार्य प्रवेश्यतां विभीषणः ।

ऊँ - 4

है ।* वह एक कुतूहल मित्र है ।

विभीषण

यह एक नैतिक धार्मिक और रामभक्त के रूप में चित्रित है । परस्त्री - हरण को नितान्त अनुचित, धर्म-विस्तृत कहने के कारण वह रावण द्वारा देश-निष्कासन का दण्ड पाता है । वह राम की शरण में आ जाता है । विभीषण एक अनुभवी तथा कुशल उपदेष्टा भी है । सागर पर दिव्यास्त्र प्रयोग¹ की मन्त्रणा उसी ने दी । वह राम के लिए रावण-विजय का सहायक है ।

रावण

भारत में रावण को परस्त्री-लम्पट, छुट्ट, क्रूर और अत्याचार - भ्रष्ट प्रवृत्ति वाला चित्रित किया है । रावण स्वार्थ-सिद्धि निमित्त उचितानुचित सभी करता है । वह दम्भी प्रवृत्ति वाला भी है । अपने पराक्रम पर उसे विश्वास² है । पुत्र हनु, ³ के निधनीपरान्त उत्तेजित होकर सब अनर्था की वृत्ति सीता को समझता है तथा मारने के लिए तलवार उठाता⁴ फिर समझाने पर विरत होता है । सीता की स्वयंश्रुतिनी करने के लिए माया व छल का भी प्रयोग करता है।⁴

1. देव । किमवागन्तव्यम् । यदि मार्गं न ददाति, तच्छ्रेष्ठं दिव्यमस्त्रं तावद् विस्तृत्यमहेति देवः ।

- ॐ - 4

2. कृत्रिमकुम्भतटमेकद्वारधारः

ये ध्वजहारमतिरेष विधास्यति त्वाम् ।

तस्मात्तवन्तवनिमिषा इह मत्करस्यः

ॐ । बध यास्यति कुलापस । तिष्ठ तिष्ठ ॥

ॐ 5/16

3. x x x तस्मादमित्रविषयमस्या हृदयं मित्वा कुष्टान्त्रमालात्कृतः
खड्गो गान्धिपातेन समनुजपुर्णं सकलवानरकुलं ध्वंसयामि ।

ॐ - 5

4. एते तयोर्मानुषयोः शिरसी राजपुत्रयोः ।
युधि हत्वा कुमारिण गृहीते त्वत्प्रियार्थिना ॥

ॐ 5/8

अंगद

अभिषेक में अंगद के चरित्र का स्वतन्त्र विकास परिलक्षित नहीं होता है । अंगद की प्रस्तुति वालि के मृत्यु के समय नाटककार द्वारा की जाती है । मृत्युपन्थी वालि अपने पुत्र अंगद को अपने मृत्यु के समय राम व लुग्रीव को सौंप देता है । सीता की खोज के समय राम को अंगद का विशेष सहयोग प्राप्त होता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि अंगद के चरित्र में साहस, वीरता एवं सेवा-हृति आदि गुणों का सम्यक् समायोजन है ।

नाटककार भास का राजपरिवारों के साथ निकट का सम्बन्ध रहा है । इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि वे स्वयं राजा या सामन्त कुमार रहे हों । यह बात इस तथ्य से प्रमाणित होती है कि उन्होंने राजपरिवारों का अत्यन्त चित्रण किया है । भास चरित्रों के प्रस्तुतिकरण में अजितीय हैं । नारी चरित्रों के चित्रण में उनकी प्रमुख विशेषता यह है कि पात्र के साथ सामाजिकों का तीव्र सम्बन्ध उक्ति रहता है ।

पंचम अध्याय

"एकफल" -कर्तृत्व सम्बन्धी विवाद

"त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज" द्वारा प्रकाशित टी. गणपति शास्त्री संपादित "भासनाटकयुग्म" की प्रामाणिकता - अप्रामाणिकता विषयक विवाद संस्कृत-साहित्य-जगत् में अभी चल ही रहा था कि 1941 में "यज्ञफल" नामक नाटक के प्रकाशन ने प्रवर्तित विवाद को अत्यन्त गम्भीर बना दिया। राजवैद्य कालिदास शास्त्री ने इस नाटक का न केवल प्रकाशन अपितु इसे भासकृत होने का उद्घोष किया। यह भास रचित है अथवा नहीं, यह विवेचित करने से पूर्व इस नाटक के विषय-वस्तु का संक्षिप्त आकलन उचित होगा -

"यज्ञफल" में "रामायण" वर्णित बालकाण्ड की कथा कुल सात अंकों में ग्रथित है। प्रकारान्तर से यह "प्रतिमा" और "अभिषेक" नाटकों की कोटि में रामायण-कथानक पर आधारित नाटक है।

प्रथमांक -

महाराज दशरथ के चार पुत्रों का राज्य में जन्मोत्सव का आयोजन, अमात्य सुमन्त्र द्वारा विविध उपहारों का वितरण एवं बन्दीयों को बन्दीगृह से इस आनन्दोत्सव के उपलक्ष्य में मुक्त करने का आदेश दिया गया। उसी समय नृपति दशरथ को स्मरण हुआ कि विवाहावसर पर उन्होंने कैकेयी को उसके उत्पन्न पुत्र को राज्याभिषेक करने का वचन दिया था।

द्वितीयांक -

नृप दशरथ अन्तः पुरस्थ विहारोपवन में रानियों के साथ एकान्त में राज्याभिषेक विषयक विचार-विमर्श करते हैं। वह ज्येष्ठ पुत्र राम को राज्याभिषेक करने की अभिलाषा व्यक्त करते हैं। कैकेयी -सहित सभी रानियाँ उनकी इस इच्छा को उचित मानकर अपनी सहमति प्रकट करती हैं। कैकेयी को नृप-वचन अर्थात् उसके पुत्र को राज्याभिषेक करने का सन्दर्भ आने पर भी वह राम को ही सर्वथा उपयुक्त घोषित करती है।

तृतीयांक -

राम की अप्रतिम शक्ति का ज्ञान हो जाने पर उनका अनिष्ट

करने की इच्छा से अयोध्या नगरी जाता है। इन्द्र राम के रक्षणार्थ कुबेर को नियुक्त करते हैं, कुबेर तदर्थ गन्धर्व-समाज को अयोध्या प्रेषित करते हैं। तंयोगात् विश्वामित्र अपने शिष्य अतिबल के अन्वेषणार्थ अदृश्य रूप में पहुँचते हैं, परन्तु रावण उन्हें देख लेता है। वशिष्ठ चार शिष्यों के साथ आते हैं, शिष्य बाण वर्षण करने लगते हैं। रावण और विश्वामित्र राम का बाण पकड़ लेते हैं। तब राम आग्नेयास्त्र छोड़ने की इच्छा करते हैं यह देख रावण भागता है। भाइयों के कहने से राम इच्छा त्याग देते हैं। मन्यरा सहित अन्य दासियाँ कुशों के पर बाणों के चिन्ह देखकर पुष्प चुनने से विरत हो जाती हैं। वशिष्ठ रावण और विश्वामित्र-आगमन की घटना बताते हैं। राम को विश्वामित्र के प्रति आदर भाव प्रकट करने का आदेश देते हैं। यह भी तीक्ष्ण करते हैं कि विश्वामित्र दशरथ से राक्षसों के दमनार्थ उनके साथ राम को भेजने का अनुरोध करेंगे।

चतुर्थीक -

अवध राजमवन के बन्दिगण का परस्पर विश्वामित्र के ब्राह्मणत्व एवं क्षत्रियत्व -विषयक मतभेद, स्पष्टतः सुना जाता है। उसी के बीच विश्वामित्र का आगमन होता है। मन्त्री तुमन्त्र-सहित नृप दशरथ उनका सहर्ष स्वागत करते हैं। वशिष्ठ से विश्वामित्र राम की शिक्षा के विषय में वातलाप करते हैं। राम भी विश्वामित्र को उनके प्रश्नों का समुचित उत्तर देते हैं। विश्वामित्र प्रसन्न होते हैं। विश्वामित्र दशरथ से ऋषि-आश्रमों में राक्षसों के शीघ्र उत्पत्त की वर्णन करते हैं। इसी प्रसंग में कह रक्षार्थ राम को अपने साथ ले जाने की अनुमति याचित करते हैं। साथ ही वह राम को जृम्भकास्त्र की शिक्षा देने का पवन देते हैं। अन्ततः दशरथ राम को ले जाने के लिए अनुमति देते हैं।

पंचमीक -

यह अंक प्रवेशक से प्रारम्भ होता है। ऋषि विश्वामित्र के शिष्यों में परस्पर यक्ष-क्रिया बाधित होने के सम्बन्ध में विवाद हो रहा है - विश्वामित्र क्षत्रिय हैं, उन्होंने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया है, इस कारण ब्राह्मणवर्ग ने रावण के द्वारा राक्षसों को उत्तेजित कर रखा है। यह जानकर विश्वामित्र

क्षत्रियकुमार राम को लाकर उन्हें सभी दिव्यास्त्रों की शिक्षा देंगे और राम रक्षा करेंगे । राम मारीच और सुबाहु इत्यादि राक्षसों का वध करते हैं । यह देखकर विश्वामित्र उनके बल-वीर्य और उत्साह की प्रशंसा करते हैं । साथ ही ग्राम्य तथा अरण्य-जीवन की विशेषता बताकर प्रशंसा करते हैं । यह यह भी तर्क देते हैं कि धर्म की रक्षा निमित्त राम का राक्षस से युद्ध भी होगा । अन्त में विश्वामित्र राम-लक्ष्मण, दोनों राजकुमारों को यह कहकर "अज्ञाधारण फल प्राप्त होगा" राजा जनक द्वारा आयोजित यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए मिथिला नगर अपने साथ ले गये ।

कथा -

विश्वामित्र के लिए राजा जनक द्वारा नियुक्त परिचारक परस्पर चर्चा करते हैं कि उपवन में राम-सीता प्रथम दर्शन में ही पारस्परिक अनुरागाब्ध होने लगे हैं । सीता और राम दोनों पुनः परस्पर मिलने के लिए उत्कण्ठित भाव से यत्नशील होते हैं । विश्वामित्र तथा जनक दोनों इस प्रयत्न को सफल बनाने में सहायता करते हैं । राम, सीता से मिलते हैं । सीता की परिचारिका से उन्हें ज्ञात होता है कि जो शंकर का धनुष नष्ट कर सकेगा, जनक उसी से सीता का विवाह करेंगे । अचानक इसी बीच वहाँ जनक उपस्थित होते हैं, देखकर राम हट जाते हैं । जनक की विश्वामित्र से बात होती है और इस प्रसंग में विश्वामित्र जनक को आश्चर्य करते हैं राम शिव का धनुष लुका देंगे । फिर जनक इस कार्य के लिए तिथि का विनिश्चय करते हैं ।

सप्तमं -

इस अंक में राम और सीता का परिणय-दृश्य अंकित है । परिणय की इस जुल-वेला में जनक तथा दशरथ-सहित अन्य नृपति एवं राजन्यगण उपस्थित हैं । शिव-धनुष के मंग होने की मयंकर ध्वनि गुंज उठी थी । उस ध्वनि को सुनकर वहाँ परशुराम अप्रत्याशित रूप से उपस्थित होते हैं । वह राम पर बहुत रोष प्रकट करते हैं । उनके रोष के समनाय विश्वामित्र, वसिष्ठ-सहित जनक अनुनय-तिनय करते हैं । अन्ततः परशुराम राम को विष्णु-स्वरूप पहचान,

उन्होंने अपना धनुष प्रदान करते हैं । इस प्रकार पुनः आनन्द छा जाता है ।
परशुराम भी आशीर्ष देकर प्रस्थित हो जाते हैं ।

इस प्रकार नाटक "यक्षफल" में हमें राम-जन्म से लेकर विश्वामित्र-
यक्ष-रक्षण, मारीच आदि राक्षसों का विनाश, जनकपुर में शिवधनुष-भंग और
राम-सीता परिणय तक की कथा समायोजित प्राप्त होती है ।

"यक्षफल" में प्रकारान्तर से वैदिक यज्ञ, तप-साधना का मुष्णान
किया गया है । यज्ञ-सम्पादन का ही फल था कि निस्तन्तान नृप दशरथ को
पुत्रों की प्राप्ति हुई । इसीलिए नामकरण "यक्षफल" किया गया है जैसा कि
रामायण-कथानक पर आधृत भास के "प्रतिमा" तथा "अभिषेक" नाटकों के नाम ।
यही नहीं भास के "स्वप्नवासवदत्तम्" आदि अन्य कई नाटकों के भी नाम मुख-
कथावस्तु पर ही हैं । इसके अतिरिक्त "भास-नाटक-समूह" के तेरह नाटकों की
भाषा-शैली एवं प्रक्रिया का भी साम्य इस नाटक में स्पष्टतः परिलक्षित होता
है ।

भाषा-शैली तथा रचना-पद्धति की समानता के आधार पर भी
इस नाटक "यक्षफल" को भासकृत स्वीकार कर लेना संगत प्रतीत नहीं होता ।
प्रो० झाला¹ का मत है - भास के अन्य नाटकों की ही भाँति "यक्षफल" नाटक
में समान रचना-प्रक्रिया का निर्वहन आद्यन्त अवश्य किया गया है । परन्तु मौलिक
उद्भावनाएँ हमें विपरीत धारणा के प्रति प्रेरित करती हैं । अनेक ऐसे प्रसंग हैं जो
भासीय दशकाल के प्रतिकूल हैं -

1. पाँचवे अंक में विश्वामित्र ग्राम्य तथा अरण्य-जीवन की प्रशंसा
और नगर-जीवन की आलोचना करते हैं ।

2. राम द्वारा धनुष भंग होने से पूर्व ही उपवन में राम-सीता का
न केवल परस्पर दर्शन वरन् पारस्परिक रागानुराग की प्रगाढ़ता प्रदर्शित की गयी

हे [अंक 6] । साथ ही राम के मन में सन्देह होना कि यह सीता कदाचित् ब्रह्मर्षि-कन्या हो १ यह कात्तिदास के "अज्ञानशाकुन्तल" के उस सन्दर्भ का अनुकरण प्रतीत होता है जहाँ दुष्यन्त शाकुन्तला के प्रति आकृष्ट होते हुए उसे कण्व ऋषि की पुत्री होने की संका करता है । इससे संकेत मिलता है कि परफाँ की किसी रचनाकार ने मात की रचना-पद्धति एवं भाषा-शैली का अनुकरण कर इस नाटक की रचना की ।

नाटक "यक्षफलम्" का कर्तृत्व "भासनाटकचक्रम्" से पुष्पक प्रकाशित रचना होने के फलस्वरूप जहाँ एक ओर विवादास्पद बना, वहीं 1942 में नाटक-प्रक्षेपा रूप में जयपुरस्थ गोपालशास्त्री का रचनामोद्घोष तथा टीकात्रय [यदि टिप्पणी कहें तो असंगत नहीं] का शास्त्रीय महाभाग द्वारा अनुलग्नक, ने निगद्य-विनिगद्य की धारा को एक सार्थक मोड़ प्रदान कर दिया । इन टीकाओं में सर्वथा मूल्यवान् है नाटक-रचयिता का ३ उनको गौरव प्रदान करने वाली, जहाँ बुद्धि विनाशियों एवं अधसाधकों के लिए कुतूहलावसर सहजतः उपस्थित होकर अनायास ही गोपालशास्त्री के कर्तृत्व को सन्देहास्पद बना देता है -

धूपीनां पुमो यं क्त दिक्करस्य क्षयमगात् ।

प्रकाशो दीपानां रजनिवदनार्त्तकृतिरिव ॥

- अंक 1/28

छन्द में प्रथम चरणस्थ पंचम वर्ण एवं तृतीय चरण का पंचमवर्ण, इसी रीति से चतुर्थ तथा द्वितीय चरणों में आगत गणनया अन्त से पंचम स्थानस्थ वर्णों की संयुति "गोपालस्य" पद की सृष्टि उपस्थित कर उनको कर्तृत्व का श्रेय प्रदान करता है । दूसरी ओर यही छन्द उनके कर्तृत्व को अस्वीकारने का भी सहज मार्ग प्रशस्त करता है - शास्त्री जी स्वयं ही नाटक की मुद्रण-प्रति तैयार किये थे, यह तथ्य राजविराज के साथ हुए पत्राचार सन्दर्भ में उनके द्वारा प्रेषित विवरणों से पुष्ट होता है - संयोगतः शास्त्री गोण्डल में ठहरे । वहाँ उन्हें प्लेनिक रूप में रसशाला की पाण्डुलिपियों पर शोधकार्य-निमित्त नियोजित किया गया था । शास्त्री ने वहाँ उपलब्ध दो हस्तलिखित प्रतियों की सहायता से नाटक "यक्षफलम्" की मुद्रण प्रति तैयार की । इसका प्रकाशन जुलाई 1941 में हुआ । मृमिका

लिखने में भी उन्होंने साहाय्य दिया । वह उपलब्ध दोनों ही प्रतियाँ जयपुर उठा ले गये किन्तु मात्र एक ही वापस ह किया ।¹ इस प्रकार गोपालशास्त्री के लिए स्वेच्छया छल-योजना द्वारा कार्य-साधन सहज था ।

एक दूसरी मुद्रित प्रति के आवरण पृष्ठ पर मुद्रित अमर उद्धृत श्लोक किंचिद् पाठभेद सहित प्राप्त होता है -

घृणीनां पुज्जो यं बत दिनकरस्यास्तमगमात् ।

प्रदीपानां भासो रजनिवदनान्तकतिरिव ॥

ज्ञाना ने राजवैद्य के साथ हुए पत्राचार तथा प्राप्त सूचना कि "यक्षफलम्" का कोई नया संस्करण अथवा पुनर्मुद्रण नहीं किया - "क्षतिग्रस्त एवं भ्रष्ट पृष्ठों" को, पुनर्मुद्रण के अवसर पर शास्त्री द्वारा हस्तलिखित प्रति में किये गये परिवर्तन को जान, राजवैद्य ने पृष्ठ 21, 17 - 24 का पाठ संशोधित कर मुद्रित कराया ।² इस संशोधन युक्त प्रति में प्राप्त पाठ -

"घृणीनां पुजो यं - - - - - तिखि ॥"

तथा -

घृणीनां संदोहो बत दिनमणेः संक्षयमगात् ।

प्रकाशो दीपानां रजनि वदनान्मेषमिव ॥

पाठ "क" संज्ञक हस्तलिखित प्रति में उपलब्ध होता है । राजवैद्य द्वारा स्थापित उद्धृत श्लोक "क" "ख" दोनों ही पाण्डुलिपियों के पाठ से

1. That Shastri occasionally stayed at Gondal where he was employed on payment for research work on Rasashala Mss. Shastri prepared the press copy of the Yaj from the two Mss entrusted to him, which was published in July 1941. He also helped in writing the introduction. He took away both Mss to Jaipur, but returned only one of them.
- Mystery of Yajñaphalam, ABORI XLVIII-XLIX, Poona 1968 Page 429.
2. It appears that no new edition or reprint of the Yaj was issued, but while reprinting the soiled and damaged paper cover pages, on knowing of Shastri's trick of tampering with the text, the Rajvaidya, restored the correct text on page 21 and PP 17-24 only were printed. - ABORI XLVIII-XLIX, P. 430, 1968

मिन्न है क्योंकि हस्तलिखित प्रति "ख" के एकमात्र उपलब्ध स्याही के धब्बों से युक्त पृष्ठ के आधार पर आलोच्य श्लोक का जो रूप - धृषी - - - त दिनकरस्य क्षयमगात् । प्रकाशो निवदनालंकृतिरिव ।" प्राप्त होता है । जब दोनों ही प्रतियों में यह छन्द प्रायः समान है तो मुद्रित में पुंजोऽयं स्यात्तमगमत् एवं प्रदीपानां भासो" पाठ का अक्षरों की विश्वसनीयता का लाभ कैसे सम्भव है ? अर्थात् यह पाठ कथमपि उचित नहीं कहा जा सकता ।

स्तावत् विवेचन हमें एक संकेत दिशा की ओर सहज ही उपस्थित होने का सम्बल देता है, वह यह कि, शास्त्री महोदय से द्वेषभावामिश्रित, हस्तलिखित प्रति के पाठ की उपेक्षाकर, सार्थक शब्द "भासो" को पुनर्मुद्रित करने वाले व्यक्ति विशेष द्वारा समावेश प्राप्त हो गया । इस संशोधित पाठ का आधारभूत बिन्दु कहाँ है ? यह सर्वथा रहस्य के गर्भ की वस्तु ही बनी है, और बनी रहेगी ।

तृतीय टीका [टिप्पणी] "यक्षफलम्" के द्वितीय अंक के प्रथम के पंचम छन्दों में प्रथम चरणस्थ अष्टमवर्णों की संयुति "भासानुकारि" को जन्माती है । यह भासानुकारि आलोचकों के लिए एक सम्बल प्राप्त हो गया कि उनको ऐसे प्रकार के दर्शन द्वारा जैसे उन्हें अमिट रेखा दिखायी पड़ गयी । तबने सहज भाव से निष्कर्ष प्राप्त किया "भास के अनुकरण पर या भास की रचना-पद्धति को आधार मान, प्रस्तुत कृति ।" अर्थ यह कि "यक्षफलम्" भास रचना-पद्धति के अनुकरण पर रचित नाटक है । इस "भासानुकारि" द्वारा यह तो एक निश्चित सत्य उजागर होता ही है कि "यक्षफलम्" भास की रचना नहीं है । फिर द्वितीय टीका [टिप्पणी] से प्राप्त शब्द "गोपालस्य" उसे गोपालशास्त्री की रचना स्वीकारने के लिए सबल संकेत देता है, परन्तु इसे शास्त्री महानुभाव के बुद्धि - पाटव से इतर तथ्यात्मक आधार स्वीकार कर लेना मात्र अदूरदर्शिता एवं विवेकमूर्धता ही कही जायेगी, क्योंकि नाटक की मुद्रण प्रति का उत्तरदायित्व वहन करने वाले श्री शास्त्री यथाश्लाघ्य परिवर्तन - परिवर्द्धन करने में स्वच्छन्द रहे । इस स्थिति में उनकी भी रचना स्वीकारना असम्भव है ।

अब प्रश्न उपस्थित होता है, नाटक की प्राचीनता एवं आधुनिकता का सीमा निर्धारण । "भासानुकारि" प्रथम प्रश्न प्राचीनता का स्फुटः निराकरण कर देता है । अर्थात् यह नाट्यकृति "भास" की अथवा भासकालीन नहीं है । यह रचना अतएव आधुनिक होते हुए भी अत्यन्तानुपम कीसर्पी कृति की नहीं कही जा सकती । "यज्ञफलम्" न तो इतना प्राचीन है जितना भास तथा न इतना आधुनिक जितना शास्त्री {गोपालशास्त्री} । "भासानुकारि" शब्द से घोषित है कि यह भास के अनुकरण पर प्रणीत हुआ, जो समय दण्डी और शक्तिभद्र के समय से पर्याप्त पश्चात् की कालावधि हो सकती है ।¹

कुछ आलोचक "यज्ञफलम्" नाटक में प्रयुक्त उपयोगि, कर्म, कृपा, पुष्प, प्रतापी एवं भ्रम आदि शब्दों को संस्कृत अथवा गुजराती शब्दों के संस्कृत रूप कहकर कृति को अत्याधुनिक -कोटि में रखने का दुष्प्रयास करते हैं परन्तु मात्र शब्दों के प्रयोग से इस नाटक को आधुनिकता से विमुक्ति नहीं किया जा सकता । कारण ऐसे शब्दों की प्रमाणिकता तथा प्राचीन {प्रयोग विषयक} मोनियर विलियम्स ने भी स्वीकारी है । अधुनातन संस्कृत समाज में व्यवहृत शब्द "नमस्ते" का नाटक में प्रयोग भी एक आधार है जो मिराजी, झाला आदि विद्वानों को कृति को आधुनिक घोषित करने का बल प्रदान करता है परन्तु कदाचित् ये विद्वान् यह विस्मृत कर गये कि "नमस्ते" का प्रयोग भवभूति के "उत्तररामचरितम्" नाटक में भी हो चुका है {निर्णय सागर संस्करण/पृष्ठ 23} है । अतः यह आधार भी सर्वथा निरर्थक ही स्वीकारना संगत है ।

1. Thus the Yajis neither as old as Bhasa nor as modern as Shastri. As indicated by Bhasanukari, it was written in imitation of Bhasa, long after the time of Dandin and Saktibhadra, Mystery of Yajnaphalam, ABORI XLVIII-XLIX, Poona, 1968, Page 431.

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं "यक्षगानम्" नाटक न मासप्रणीत और न गोपालशास्त्री रचित, अपितु किसी अन्य रचनाकार की कृति है, जिसने मास रचना पद्धति की अनुकृति मात्र करना अपेक्षित स्वीकारा कर्तृत्व का गुस्तर भ्रैय नहीं ।¹ अतः एव इस प्रबन्ध में उसकी अधिक चर्चा हम आवश्यक नहीं मानते ।

1. Bhasa : A study, A.D. Pusalker, Page No. 529, 2nd rev.ed.
Delhi Munshiram Manoharlal, 1968.

उपसंहार

भास संस्कृत के प्राचीन नाटककारों में से अन्यतम हैं। उन्होंने संस्कृतनाट्य-रचना-पद्धति को दिशा दी, वह दिशा सकेत कालिदास जैसे संस्कृत साहित्याकाश में जाज्वल्यमान अमृतानन्दज्योति का उद्भासक बना। "भासनाटकयक्रम" की परीक्षा करने के पश्चात् अध्येता - समीक्षकों द्वारा उसके कर्तृत्व पर एक प्रश्नचिन्ह लगा। प्रश्नचिन्ह लगाने वाले वह थे, जो "यक्रम" के प्रवर-ताप में प्रतिष्ठित एवं प्रतिष्ठापित नाटक-रचनाकारों को बुलसो देखने लगे थे। अन्ततः उन्हें रचयिता में "काव्यं यज्ञैः" प्रतिमूर्त प्रतिलक्षित हो गया और नाटकों में रचनाकार का कथमपि सकेत न होना संगत प्रतीत हुआ एवं राजशेखर द्वारा अभिज्ञप्ति "स्वप्नवासवदत्तम्" की रचनाप्रक्रिया से सभी नाटकों को अभिमूर्त पाया तथा "भासनाटकयक्रम" का एककर्तृत्व स्पष्ट हुआ, श्रेय महाकवि भास को प्राप्त हुआ, वह प्रथम प्रसिद्ध नाटककार प्रतिष्ठित हुए।

"भासनाटकयक्रम" के छह नाटक महाभारत से एक कृष्ण-कथा प्रमुख किसी पुराण एवं चार लोककथा अथवा बृहत्कथा से जीवन ग्रहण किये हैं। "स्वप्न-वासवदत्तम्", "प्रतिज्ञायौगन्धरायण" तथा "अविमारक" ऐसी नाट्य कृतियाँ हैं, जिन्हें हम ऐतिहासिक भी कहें तो अनुचित नहीं है। इन कृतियों में ऐतिहासिक स्थानों, राजनगरों, नृपतियों के उल्लेख हैं। सन्दर्भित सातत्य में यदि हम देखते हैं तो "उदयन", "महासेन", "कौशाम्बी", "उज्जयिनी" और "राजगृह" आदि व्यक्ति एवं नगर ईसा पूर्व छठी शती और पाचवीं शती तक स्पष्टतः स्थित रहे हैं। शुद्ध रचित नाटक "मृच्छकटिकम्" का उपजीव्य भास का "वास्तव" है। शुद्धक का स्थितिकाल पाचवीं शती मानी जाती है। नाट्यशास्त्र के आचार्य भरत को ई० पूर्व तृतीय शती माना जाता है और कालिदास की स्थिति ईसा पूर्व प्रथम शती मानी जाती है। अतः भास का स्थितिकाल इस प्रकार बाह्या-भ्यन्तरीय साक्ष्यों के आकलनोपरान्त ई० पू० चतुर्थ शती के पूर्व भाग के मध्य से तृतीय शती के उत्तरार्द्ध तक होना चाहिए।

महाकवि भास की रचना-पद्धति, चित्रण एवं उद्भावनाएँ परवर्ती

कवियों के कविकर्म के लिए सहायक ही नहीं बनी अपितु यत्र-तत्र शब्द, वाक्य तथा परिवेशानुकूल वह अनायास ही अवतरित हो गयी । संस्कृत साहित्य के प्रतिनिधि कवि कालिदास तक ने भास की उद्भावना को कतिपय परिवर्तन के साथ अंगीकृत कर लिया । "अभिज्ञानशाकुन्तल" में अश्वि दुर्वासा से अभिशप्त शकुन्तला प्रिय राजा दुष्यन्त से वियुक्त हुई, शापवश ही दुष्यन्त उसे स्वीकार नहीं करता । शाप की यह कल्पना सम्भवतः अविमारक से उद्भूत है, क्योंकि ब्रह्मर्षि शाप के कारण ही अविमारक एवं कुरंगी का विवाह प्रथमतः बाधित हो गया था । इसी प्रकार "सुरद्विपास्फालनकर्कशांगुली" पद दोनों कवियों ने एक ही उद्भावना की अभिव्यक्ति में की है, जो भास का स्पष्ट प्रभाव है ।

संस्कृत साहित्य का एक-मात्र समकार "मृच्छकटिकम्" का उपजीव्य भास का वास्तव है । शुद्रक ने निश्चित ही पूर्वकथा को अपनी इस कृति में विवृत किया है । सभी पात्रों का समायोजन भी समान, घटनाक्रम तथा चित्रण में समानता है । भवभूति का "उत्तर-रामचरितम्" भास के "प्रतिमानाटकम्" की उद्भावनाओं का निश्चित अंगी है । रामकथाश्रित नाटकों में प्रथमतः "प्रतिमा" ही कस्मरत - प्रधान रचना है । "चित्त-वीथी" की कल्पना का उत्स अयोध्या में "प्रतिमा" नाटक का प्रतिमागृह मानना पड़ेगा ।

1. हरेः कुमारोऽपि कुमारविक्रमः

सुरद्विपास्फालनकर्कशांगुली ।

भुजे शचीपत्रविशेषकर्कशिते

स्वनाम चिन्हं निचरवान् सायकम् ॥ - रघुवंश 3/55

x x x x

अनेकयज्ञाहुतितर्पितो द्विजः

किरीटवान् दानवसंघमर्दनः ।

सुरद्विपास्फालनकर्कशांगुलि

मया कृतार्थः खलु पाकशासनः ॥

- कर्णभारम्, 1/23

रामायणीय कथाश्रित दोनों नाटकों में महाकवि भास ने प्रायः कथासूत्र में कतिपय परिवर्तन भी किये जो नाट्यसंरचना की दृष्टि से आवश्यक हैं। कवि द्वारा किये गये ये परिवर्तन नाटकीय संरचना की गतिशीलता में व्यवधान न होकर मौलिकता एवं कोतुहलता प्रदान करते हैं। भास ने "प्रतिमा" में वल्कल घटना को परिकल्पित कर वनवास-घटना में सहजाता ला दी है। इसी प्रकार रामराज्याभिषेक के समय केवल भरत का ही अयोध्या में अनुपस्थित रहना तथा प्रतिमा का दर्शन करते ही भरत का दशरथ के निधन से अवगत हो जाना आदि भास की मौलिक कल्पना का युद्धान्त निदर्शन है। यस्तुतः भास एक आदर्शवादी नाटककार है, उन्होंने अपने पात्रों के चरित्र को आदर्शोन्मुख ही उपस्थित करने का प्रयास किया है। रामायण में जहाँ कैकेयी का चरित्र कलंकित है वहीं भास की कल्पना में कैकेयी निर्दोष है।

इसी प्रकार "अभिषेक" की कथा सर्वसुघात होने पर भी कतिपय परिवर्तनों द्वारा आकर्षण उपस्थित किया गया है। समुद्र के मध्य "यही मार्ग है" वल्गु द्वारा ऐसा कहनाकर भास ने राम की अलौकिकता को आभासित कराने का प्रयास किया है। रामायण कथा से भिन्न पिता की अपूर्ण अच्छा को मूर्तरूप देने की दृष्टि से "अभिषेक" में राम का अभिषेक भास ने दशरथ की उपस्थिति में कराया है।

"यक्षफल" भी "प्रतिमा" और "अभिषेक" नाटकों की कोटि में रामायण-कथानुक आधारित नाटक है। सन् 1941 में इस नाटक के प्रकाशन ने भास विषयक विवाद को और भी जटिल बना दिया। मुख कथावस्तु, भाषा शैली एवं प्रक्रिया साम्यता के आधार पर विद्वन्मंडली इसे भास प्रणीत मानने लगी किन्तु यक्षफल के 2 अंक के प्रथम से पंचम छन्दों में प्रथम चरणस्थ अष्टमवर्णी की संयुति "भासानुकारि" द्वारा यह एक निश्चित सत्य उजागर हुआ कि यक्षफलम् भास की रचना नहीं है।

महाकवि भास परवर्ती नाटककारों के लिए उपजीव्य रहे हैं। इनके नाटक अभिनेयता की दृष्टि से भी उत्कृष्ट हैं।

महाकवि भास वैदर्भी रीति के कवि हैं। उनके लघुवाक्य .

गम्भीरातिगम्भीर भावों को व्यक्त करते हैं । अतिविस्तारी अथवा समासबहुल-
पदावली-युक्त वाक्य लिखने में उनकी अभिरुचि नहीं थी । इस कारण पात्रों के
तंवाद अत्यन्त सारगर्भित हैं । तंवादों में वाक्य सूक्ति रूप में प्रयुक्त प्रतीत होते
हैं । उनकी कुछ सूक्तियाँ बड़ी सुन्दर हैं -

निर्दोषदृग्वा हि भवन्ति नार्यो यो विवाहे व्यसने वने च ।

-प्रतिमा , अंक, 1/29

अरीरेऽरिः प्रहरति हृदये स्वजनस्तथा ।

-वही- अंक, 1/12

बहुदोषाण्यव्यानि ।

-वही- अंक, 2/15

तुष्टुत्सुत्स्थानां मातृदोषो न दोषो ।

-वही-, अंक - 4/21

कृतः क्रोधो विनीतानां लज्जा वा कृतचेतसाम् ।

-वही-, अंक 6/9

मर्तुनाथा हि नार्यः ।

-वही-, अंक 1/25

वागुराच्छन्नमाश्रित्य मुग्धाभामिष्यते वधः ।

-अभिषेक, अंक 1/19

अहो देवस्य विघ्नक्रिया ।

-वही, अंक 2/10

कथं लम्बतटः तिहों मृगेण विनिपात्यते ।

गजो वा तुमहान् मत्तः भृगालेन निहन्यते ॥

-वही-, अंक 3/20

धर्म - स्नेहान्तरे न्यस्ता बुद्धिदोषायते यम ।

-वही-, अंक 6/23

मज्जमानमकार्येषु पुस्त्यं विषयेषु वै ।

निवारयति यो राजन् , स मित्रं रिपुरन्यथा ॥

-वही-, अंक 6/22

अकारणं रूपमकारणं कुलं महत्सु नीयेषु च कर्म शोभते ।

-पंचरात्र, अंक 2/3

मिथ्याप्रज्ञता क्लृप्तं नाम कष्टा ॥

-वही- अंक 2/60

मृतोऽपि हि नराः सर्वे सत्ये तिष्ठन्ति तिष्ठति ।

-वही- अंक 3/23

जनयति क्लृप्तं श्रेष्ठं प्रज्ञयो मिथ्यामानः ।

-वाल्मीकि, अंक 1/14

स्वदेशीयवर्ति हि शक्तिरिति मनुष्यः ।

-वही-, अंक 4/6

प्रदेशो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते ।

-रघुनाथकृत, अंक 1/7

कामं धीरस्वभावस्य स्त्रीस्वभावस्तु कातरः ।

-वही-, अंक 4/6

कतिपय आक्षेप :-

कालिदासादि परवर्ती कवियों के प्रेरणास्त्रोत संस्कृतनाट्य - रचना के आचार्य महाकवि भास का "नाट्यकर्म" अनुशीलनोपरान्त हमें कुछ दोषों की ओर संकेत करता है, जो दोष होकर भी गुण योग्य ही परिगणनीय हैं । सर्वाधिक उल्लेखनीय दोष है - ॥1॥ कालान्वित-अभाव । कालान्वित का यह अभाव हमें "रघुनाथकृत", "वाल्मीकि", "अभिषेक" एवं "बालचरित" में विशेषतः दृष्टिगत होता है । ॥2॥ रंगमंच पर अप्रत्यक्ष पात्रों का स्वर अस्वाभाविक लगता है । ऐसा अक्सर प्रतिज्ञायोगन्धरायण में उपस्थित हुआ है । ॥3॥ उपमा तथा रूपक आदि के प्रयोग नवीदभावनाओं का अभाव है, परम्परागत बिम्ब ही प्रयोग किये गये हैं । ॥4॥ दक्षिण भारत के नद, नदी पर्वतादि का वर्णन अत्यल्प है जो उन पर संकुचित दृष्टि का दोषभाजन बनाता है ।

कवि की सृष्टि देश और काल की सीमा से नहीं बंधती । वह स्वयंभू और निरंकुश होता है । अतएव ये सब दोष भी उनकी प्रतिष्ठा को दुर्लभ करते हैं ।

निष्कर्ष

मात का कवित्व नाटकत्व का पुरक है । पद्यों के भावों को प्रकट करने की विम्वरता लिए अलंकारों की जितनी आवश्यकता है कवि ने उसकी पूर्ति की है । रस के निर्वहण का सर्वत्र ध्यान रक्खा गया है ।

रामकथाश्रित नाटकों - "प्रतिमा" व "अभिषेक" में मात ने रामायण से भिन्न कुछ परिवर्तन नाटकीय संरचना की दृष्टि से किये थे । रामकथाश्रित "प्रतिमा" व "अभिषेक" ही वस्तुतः मात की रचना है । "यक्षगान" मात की रचना नहीं है । हम भाषा, भाव, शैली, कवित्व एवं वस्तुचयन व पात्र-चित्रण आदि के समीक्षण के आधार पर मात के रूपक सभी दृष्टियों से अत्यन्त महत्व के हैं ।

मालविकाग्निमित्रम्	
तुलितमुक्ताक्ली	- राजभेखर
पृथ्वीराजविजय	
गउडवहो	- वाक्पतिराज
हर्षचरित	- बाणभट्ट
अवन्तिसुन्दरीकथा	- दण्डी
भृंगार-प्रकाश	- भोजदेव
अभिनव भारती	- अभिनव गुप्त
काव्यालंकार	- भामह
कौमुदीमहोत्सव	- विज्जिका
प्रसन्नराधव	- जयदेव
स्वप्नवासवदत्तम्	
प्रतिमा	
पंचरात्र	
दुतवाक्यम्	
अभिषेक	
अविमारक	
उत्सर्ग	
दूतघोषक	
सांस्कृतिक निबन्ध	- भगवत्शरण उपाध्याय
भारदा । संस्कृत पत्रिका ।	
प्रतिज्ञायौगन्धरायण	
सुत्तनिपात	
मुच्छकटिकम्	
मनुस्मृति	
गुहा साम्राज्य का इतिहास । भाग-2 ।	- वासुदेव उपाध्याय
पृथ्वीराज	- पराहमिहिर
वासवदत्ता	- सुबन्धु

- बुद्धचरित - अश्वघोष
 वासुदेव
 अर्थशास्त्र - कौटिल्य
 धर्मशास्त्र का इतिहास {प्रथम भाग} अनुवादक - अर्जुन घोष काश्यप
 महावंश {हिन्दी अनुवाद} - भदन्त आनन्द कौसल्यायन
 दीर्घनिकाय
 सुमंगलविलासिनी {बौद्धटीका अप्राप्त}
 बालचरितम्
 कर्णभारम्
 वाल्मीकि रामायण
 रामायण मीमांसा
 रूपक रहस्य - डा० ग्यामसुन्दर दास
 शृंगार प्रकाश - वी० राघवन्
 महाकवि मात - आचार्य बलदेव उपाध्याय यशोवन्त विद्याभवन, बनारस
 भद्राक्षर मात डा० जोगि चन्द्र शर्मा, मध्य प्रदेश हिन्दी अकादमी उन्नाव, उ.प्र. 1972, मोपक
 प्रतिमा नाटकम् - जगदीश चन्द्र मिश्र
 संस्कृत साहित्य की रूपरेखा - चन्द्रशेखर पाण्डेय एवं शान्ति कुमार नानुराम व्यास
आनन्द साहित्य निवेदन, 19 ed. 1988, काठमांडू
 संस्कृत साहित्य की समीक्षात्मक इतिहास - डा० कपिलदेव द्विवेदी आनन्द साहित्य निवेदन, 19 ed. 1985
 साहित्य दर्पण - विश्वनाथ कविराज
 काव्यप्रकाश मम्मट व्याख्याकार विश्वेश्वर तिल्लान्तशिरोमणि
 दशरूपक - धनंजय - व्याख्याकार डा० भोलाशंकर व्यास
 संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी - भोनिथर विलियम्स
 भासनाटक चक्र सम्पादक बलदेव उपाध्याय
 सम्पादक सी०आर० देवधर
 सम्पादक गणपति शास्त्री

LIST OF REFERENCE BOOKS

- Bhasa : A Study** - Dr. A.D. Pusalker
- The Age of Imperial Unity** - R.C.Majumdar
- Sanskrit Drama** - Dr. A.B. Kioth
- Bhasa Natakasakram** - Ed. by C.R. Devdhar, Poona 1937
- Plays ascribed to Bhasa : Their Authenticity and Merits**
C.R. Devdhar, Poona 1937.
- Ramkarmamrtam** - Dr. Shiva Shankar Tripathi
- History of Classical Sanskrit Literature** - M. Krishnamachariar *Tr. ed. Motilal Banarsidass 1974 Delhi*
- Introduction to Pratima Natakam**
- Buddhist Record of Western Veal (Part II)**
- Bulletin of Schools of Oriental studies** 1919
- Journal of Royal Asiatic Society** 1921
- Journal of the Asiatic Society, Bombay** 1954
- Annals of Bhambarkar Oriental Research Institute XLVIII-XXIX Poona, 1968**
- Yajñaphadam : A Newly discovered Drama by Bhasa, JBRRAS, XVII, 1942**
- Critical Study of the works of Bhasa, JUB, II, 1934**
- Authenticity of the Bhasa Plays, ICXI, 1944**